उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

DVS-102

वास्तु शास्त्र के विविध आयाम

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. प्रभाकर पुरोहित अकादमिक परामर्शदाता, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी	**1**	**1,2,3,4,5**
प्रोफेसर शत्रुघ्न त्रिपाठी ज्योतिष विभाग, सं0वि0ध0वि0 संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	**2**	**1,2,3,4,5**
डॉ. अम्बुज त्रिवेदी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग वृजभूषण संस्कृत महाविद्यालय खरखुरा (गया) – बिहार	**3**	**1,2,3,4**

प्रकाशन वर्ष - 2021 **प्रकाशक** - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।
मुद्रक: - सहारनपुर इलेक्ट्रिक प्रेस, बोमन जी रोड, सहारनपुर **ISBN NO. -**

वास्तुशास्त्र के विविध आयाम DVS-102

अनुक्रम

वास्तु शास्त्र में डिप्लोमा

(DVS-20)

द्वितीय पत्र

वास्तु शास्त्र के विविध आयाम

DVS-102

खण्ड - 1
वास्तु एवं ज्योतिष शास्त्र

इकाई - 1 ज्योतिष शास्त्र का परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 ज्योतिष शास्त्र का परिचय
    1.3.1 प्रमुख स्कन्ध
    1.3.2 पंचरूपात्मक होरा शास्त्र परिचय
1.4 सारांश
1.5 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.7 सहायक पाठ्यसामग्री
1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई वास्तु शास्त्र में डिप्लोमा पाठ्यक्रम के द्वितीय पत्र (DVS-102) के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– ज्योतिष शास्त्र का परिचय। इस इकाई में आप ज्योतिष शास्त्र के परिचय का अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र क्या है इसका उद्भव, विकास प्रयोजन एवं इसके सम्पूर्ण स्वरूप के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

- जान लेंगे कि ज्योतिष शास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई?
- शास्त्र प्रयोजन क्या है?
- इस शास्त्र के कौन–कौन से प्रवर्तक रहे हैं?
- शास्त्र का स्वरूप व स्कन्धत्रयात्मक क्या है?
- आप ज्योतिष शास्त्र के स्वरूप का बोध कर पायेंगे।

1.3 ज्योतिष शास्त्र का परिचय

आकाश की ओर दृष्टि डालते ही मानव–मस्तिष्क में उत्कण्ठा उत्पन्न होती है, कि ये ग्रह–नक्षत्र क्या वस्तु है? तारे क्या टूटकर गिरते हैं? पुच्छल तारे क्या हैं? और ये कुछ दिनों में क्यों विलीन हो जाते हैं? सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में ही क्यों उदित होता है? ऋतुएँ क्रमानुसार क्यों आती हैं? आदि।

मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है, कि वह जानना चाहता है– क्यों? कैसे? क्या? हो रहा है? और क्या होगा? यह केवल प्रत्यक्ष बातों को ही जानकर सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि जिन बातों से प्रत्यक्ष लाभ होने की सम्भावना नहीं है, उनको जानने के लिए भी उत्सुक रहता है। जिस बात के जानने की मानव को उत्कट इच्छा रहती है, उसके अवगत हो जाने पर उसे आनन्द मिलता है, जो तृप्ति होती है उससे वह निहाल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि मानव की उपर्युक्त जिज्ञासा ने ही उसे ज्योतिषशास्त्र के गम्भीर रहस्योद्घाटन के लिए प्रवृत किया है। मानव ने अन्तरिक्ष की प्रयोगशाला में सामने आने वाले ग्रह नक्षत्र और तारों प्रभृति का अपने कुशल चक्षुओं द्वारा पर्यवेक्षण करना प्रारम्भ किया और अनेक रहस्यों का पता लगाया।[1]

''व्युत्पत्यर्थ''

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति ''ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्'' की गयी है; अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। इसमें प्रधानतः ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपण एवं ग्रह नक्षत्रों की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाऽशुभ फलों का कथन किया जाता है। कुछ मनीषियों का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योति सम्बन्धी विधिविषयक इस विद्या सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र है। इस लक्षण ओर पहले वाले ज्योतिषशास्त्र के व्युत्पत्यर्थ में केवल इतना ही अन्तर है कि पहले में गणित और फलित दोनों प्रकार के विज्ञानों का समन्वय किया गया है, पर दूसरे में खगोल ज्ञान पर ही दृष्टिकोण रखा गया है। विद्वानों का कथन है कि इस शास्त्र का प्रादुर्भाव कब हुआ यह अभी अनिश्चित है। हाँ इसका विकास, इसके शास्त्रीय नियमों में संशोधन और परिवर्द्धन प्राचीन काल से आज तक निरन्तर होते चले आये हैं।

ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा

ज्योतिष और ज्योतिष शास्त्र इन दोनों ही शब्दों का प्रयोग मिलता है। ''ज्योतिः अधिकृप्य कृतं शास्त्रम् ज्योतिषं शास्त्रम्'' इस अर्थ में अण प्रत्यय लगाने से ज्योतिष बनेगा। तथा ''ज्योतिः अस्ति अस्मिन्पदार्थे अर्शादिभ्ये अच'' इस सूत्र से ज्योतिषम् बनेगा। सूर्यादि ग्रह एवं अश्विन्यादि नक्षत्रों तथा धूमकेतुओं का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र वेद का श्रेष्ठ नेत्र है।

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी
श्रो.मुक्तं निरूक्तं च कल्पौ करौ

[1] भारतीय ज्योतिष (नैमिचन्द्र शास्त्री) अ0 / पृ0 17–18

या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिक

पादपद्भाद्वयं छन्दः आद्यैर्बुधैः।।

वेद पुरूष के छः अंग माने गये हैं। व्याकरण, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा, छन्द। इन छः अंगों में ज्योतिष वेद का नेत्र माना गया है। भारतीय वैदिक इतिहास में सूर्य, चन्द्रमा आदि को दैवत्व रूप में माना गया है। इसी कारण वेदों में अनेक जगह नक्षत्र, सूर्य एवं चन्द्रमा के स्तुपिपरक मन्त्र आये हैं। निश्चित ही प्राचीन वैदिक इतिहास में भारतीयों ने इनके रहस्य से प्रभावित होकर ही इन्हें दैवत्व रूप में माना होगा।

ब्राह्मण और आरण्यकों के समय में यह परिभाषा और विकसित हुई तथा उस काल में नक्षत्रों की आकृति, स्वरूप गुण एवं प्रभाव का परिणाम होने से इस शास्त्र की उपयोगिता का ज्ञान हुआ। नक्षत्रों के शुभाऽशुभ फलानुसार कार्यों का विवेचन तथा ऋतु, अयन, मास, पक्ष दिनादि, दिनमान का ज्ञान प्राप्त कराना भी इस शास्त्र की परिभाषा में परिणत हो गया। सूर्यज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, वेदांग ज्योतिष आदि ग्रन्थों के प्रणयन तक ज्योतिष गणित व फलित ये दो भेद स्पष्ट नहीं थे। यह परिभाषा ज्ञानोन्नति के साथ–साथ विकसित हुई तथा राशि एवं ग्रहों के स्वरूप, रंग, दिशा, तत्व धातु इत्यादि के विवेचन भी इसके अन्तर्गत आ गये। आदिकाल के अन्त में ज्योतिष के गणित सिद्धान्त एवं फलित ये तीन भेद स्वतंत्र रूप से प्रस्फुटित हो गये थे। ग्रहों की गति, स्थिति, अयनांश पात आदि गणितीय पद्धति ज्योतिष के अन्तर्गत निर्णय, यज्ञ–यात्रादि कार्यों का सम्पादन करने के लिए समय स्थान (अर्थात् काल व वास्तु) का निर्धारण फलित ज्योतिष का विषय माना गया।

पूर्वमध्यकाल की अन्तिम शताब्दियों में सिद्धान्त ज्योतिष के स्वरूप में भी विकास हुआ लेकिन खगोलीय निरीक्षण और ग्रहवेध की परिपाटी के कम हो जाने के कारण से गणित के कल्पनाजाल द्वारा ही ग्रहों के स्थानों का निश्चय करना सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत आ गया। तथा इस काल में ज्योतिष का अर्थ–स्कन्धत्रय–होरा–सिद्धान्त और संहिता के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इसी समय के मध्य होरा शास्त्र का विकास हुआ तथा यह पंचरूपात्मक हो गया। इसे निम्न प्रकार द्वारा आसानी से समझने का प्रयास करते हैं–
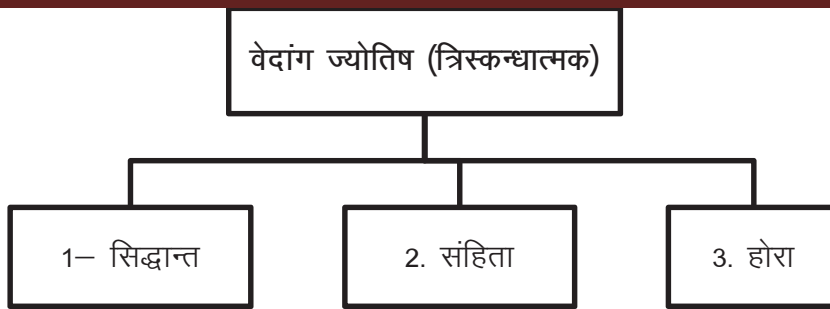
1.3.1 प्रमुख स्कन्ध

ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख तीन स्कन्ध हैं–

1– सिद्धान्त 2– संहिता 3– होरा

(1) **सिद्धान्त** – इसमें त्रुटि से लेकर कल्पकाल की गणना, सौर, चान्द्रमासों का प्रतिपादन, ग्रह तिथियों का निरूपण, व्यक्त अव्यक्त गणित का प्रयोजन, प्रश्नोतर–विधि ग्रह नक्षत्र की स्थिति नाना प्रकार के तुरीय, नलिका इत्यादि यंत्रों की निर्माण विधि दिक् देश कालज्ञान के अन्यतम उपयोगी अंग, अक्ष क्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, धुज्या, कुज्या तद्धृति समशंकु इत्यादि का आनयन रहता है। प्राचीनकाल में इसकी परिभाषा केवल सिद्धान्त गणित के रूप में मानी जाती थी।

''सिद्धान्त'' जिसमें युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बनाकर ग्रहगणित किया जाये वह ''तन्त्र'' और जिसमें कल्पिल इष्ट वर्ष का युग मानकर उस युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन का अहर्गन लाकर ग्रहानयन किया जाये उसे करण कहते हैं। समस्त ब्रह्माण्डीय कल्पना ही सिद्धान्त है।

(2) **संहिता** – इसमें भूशोधन दिक्शोधन, शल्योद्धर, मेलापक, आयानयन, ग्रहोपकरण इष्टिकद्वार ग्रहारम्भ, गृहप्रवेश, जलाशय निर्माण, मांगलिक कार्य के मुहूर्त, उन्नकापात वृष्टि, ग्रहों के उदयास्त का फल ग्रहचार का फल एवं ग्रहण फल आदि की बातों का निरूपण विस्तारपूर्वक किया जाता है।

मध्य युग में संहिता की परिभाषा होरा, गणित और शकुन के मिश्रित रूप में मानी गई है। 9वीं सदी में कर्मकाण्ड भी इसकी परिभाषा के अन्तर्गत आ गया है। संहिता शास्त्र का जन्म आदिकाल में हुआ और इसकी परिभाषा का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया।

कुछ जैन आचार्यों ने जीवनोपयोगी आयुर्वेद की चर्चाएँ भी संहिता के अन्तर्गत रखी हैं। 12वी सदी 13वी सदी में इस शास्त्र की परिभाषा इतनी विकसित हुई है कि जीवन से सम्बद्ध सभी उपयोगी लौकिक विषय इसके अन्तर्गत आ गये हैं।

(3) होरा – इसका दूसरा नाम जातक शास्त्र है। इसकी उत्पत्ति ''अहोरात्र'' शब्द से हुई है। आदि शब्द ''अ'' और अन्तिम शब्द ''त्र'' का लोप करने से ''होरा'' शब्द बनता है। जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए फलादेश का निरूपण इसमें किया जाता है। इस शास्त्र में जन्म कुण्डली के द्वादश भावों के फल उनमें स्थित ग्रहों की अपेक्षा तथा दृष्टि रखने वाले ग्रहों के अनुसार विस्तार पूर्वक प्रतिपादित किये जाते हैं। मानव जीवन के सुख दुःख इष्ट, अनिष्ट, उन्नति, अवनति भाग्योदय आदि समस्त शुभाशुभों का वर्णन इस शास्त्र में किया जाता है। होरा ग्रन्थ में फल निरूपण के दो प्रकार हैं। एक में जातक के जन्म–नक्षत्र से और दूसरे में जन्म लग्नादि द्वादश भावों से विस्तारपूर्वक विभिन्न दृष्टिकोणों से फलकथन की प्रणाली बताई गई है। होरा शास्त्र पर अनेक स्वतन्त्र रचनायें हैं। समय–समय पर इस शास्त्र में अनेक संशोधन एवं परिवर्तन हुए हैं। ज्योतिष में ही सृष्टि के रहस्य का पता चलता है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में सृष्टि के रहस्य की छान–बीन करने के लिए ज्योतिा के ग्रन्थों में सृष्टि का विवेचन अवश्य रहता है। प्रकृति के अणु–अणु का रहस्य ज्योतिष में बताया गया है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति सृष्टि के रहस्य का ज्ञान प्राप्त कर अपने कार्यों का सम्पादन कर सकता है। जड़–चेतन सभी पदार्थों की आयु आकार–प्रकार उपयोगिता एवं उनके भेद–प्रभेद का जितना सुन्दर विज्ञानसम्मत कथन इस शस्त्र में रहता है, उतना अन्यत्र नहीं। आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र का अन्तः सम्बन्ध है। ज्योतिष विज्ञान के बिना औषधियों का निर्माण यथा समय–समय सम्पन्न नहीं किया जा सकता है, कारण स्पष्ट है कि ग्रहों के तत्वों और स्वभाव को ज्ञात कर उन्हीं के अनुसार उसी तत्व और स्वभाव वाली औषधि का निर्माण करने से वह विशेष गुणकारी होती है। जो भिषक् इस शास्त्र के ज्ञान के ज्ञान से अपरिचित रहते हैं वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी दवाओं का निर्माण नहीं कर सकते। साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के ज्ञान के कारण अनेक रोगों से बच सकता है। क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चन्द्रमा है। क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चन्द्रमा के विशेष प्रभावों से उत्पन्न होते हैं।

फायलेरिया रोग चन्द्रमा के प्रभाव के कारण ही एकादशी और अमावस्या को बढ़ता है। ज्योतिर्विदों का अनुमान है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र के हृदय में उथल–पुथल मचा डालता है, उसी प्रकार शरीर के रूधिर क्षेत्र में भी अपना प्रभाव डालकर बलवान् मनुष्यों को भी रोगी बना डालता है। अतः ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्व को अवगत कर एकादशी और अमावस्या को उन्हीं तत्वों वाले पदार्थों के सेवन से बचने पर फायलेरिया रोग छूट जाता है। तथा रोगी मनुष्य के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है। इस शास्त्र की सबसे बड़ी उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव जीवन के प्रत्येक और परोक्ष रहस्यों का विवेचन करता है और प्रतीकों द्वारा समस्त जीवन को प्रत्यक्ष रूप में उसी प्रकार प्रकट करता है जिस प्रकार दीपक अन्धकार में रखी वस्तु को दिखाता है। मानव का व्यवहारिक कोई भी कार्य इस शास्त्र के बिना नहीं चल सकता है।

1.3.2 पंच रूपात्मक होराशास्त्र परिचय
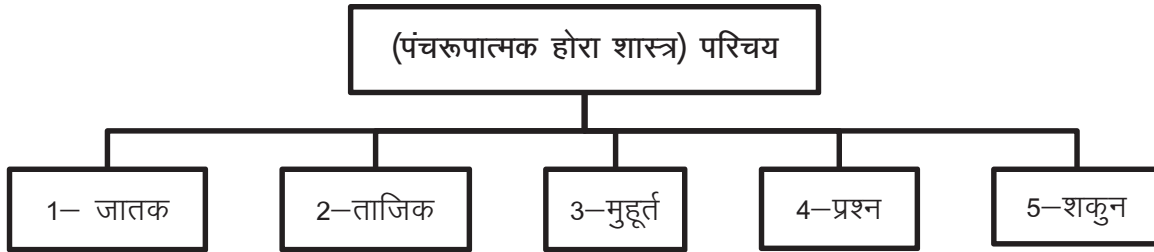
1– जातक :– जन्मजन्मान्तरों के संचित कर्मों का प्रतिपादन इस शास्त्र के द्वारा किया जाता है। जातकशास्त्र में ग्रहों की गति, स्थिति, दृष्टि, बल इत्यादि द्वारा मानव जीवन में घटने वाली शुभाऽशुभ घटनाओं का निर्धारण किया जाता ळै। प्रस्तुत ग्रन्थ में जातक शास्त्र से ग्रहों एवं भाव के बलसाधन की प्रक्रिया को तथा चिकित्सा ज्योतिष के कुद महत्वपूर्ण अंगों को लिया जाता है।

2– ताजिक :– क्रियमाण कर्मों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र को ताजिक के नाम से जाना जाता है। गोचरीय ग्रहों का मानव जीवन में प्रभाव का अवलोकन इसी शास्त्र के माध्यम से देखा जाता है। गोचर साधारणतया दो प्रकार का होता है– (1) दीर्घकालिक और (2) तात्कालिक।

3– मुहूर्त :– फलित ज्योतिष में मुहूर्तशास्त्र का भी महत्वपूर्ण योगदान है। ''कालःशुभ क्रियायोग्यो मुहूर्त इत्यमिधीयते'' यहाँ पर क्रिया शब्द से जातकर्म नामकरण इत्यादि मानव जीवन में षोऽश संस्कार को करने के लिए शुभकाल का निर्णय जो शास्त्र करता है उसे मुहूर्त शास्त्र कहते हैं। ''नाडीद्वय'' शब्द से आचार्य ने मुहूर्त के काल का निर्णय किया है। अर्थात् दो घडी का एक मुहूर्त होता है।

4– प्रश्न :– यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। इसमें प्रश्नकर्ता के उच्चारित अक्षरों पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है। इस शास्त्र के मुख्य तीन सिद्धान्त हैं– (1) प्रश्नाक्षर सिद्धान्त, (2) प्रश्नलग्न सिद्धान्त, (3) स्वरविज्ञान सिद्धान्त।

5– शकुन :– इसका अन्य नाम निमितशास्त्र भी मिलता है। संहिता के अन्तर्गत ही शकुन शास्त्र का विषय आता है। स्वप्नादि दर्शन पिल्लीपतन् पशु–पक्षियों के शब्द करने से शुभाशुभ शकुनों का विचार किया जाता है। होरा का दूसरा नाम ही जातकशास्त्र है। होरा शब्द की उत्पत्ति ''अहोरात्र शब्द'' से है। आदि शब्द अ और अन्तिम त्र का लोप करने पर होरा शब्द बनता है। जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए शुभाशुभ फल का निरूपण इसमें किया जाता है। इस शास्त्र में जन्मकुण्डली के द्वादशभावों के फल उनमें स्थित ग्रहों के अपेक्षा तथा दृष्टि रखने वाले ग्रहों के अनुसार शुभाशुभ फलों का निरूपण किया जाता है।

ज्योतिष शास्त्र के मुख्य 18 आचार्य (प्रवर्तक) हुए जो इस प्रकार हैं–

''सूर्यः पितामहोव्यासो वसिष्ठोऽत्रि पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मुनिरङ्गिराः।।
लोमेशः पौलिशश्चैव च्वयवनो यवनो भृगुः।
शौनकोष्टादशश्चैते ज्योतिः शास्त्रप्रवर्तकाः।।

अर्थात् सूर्य–पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरिचि, मनु, अङ्गिरा, लोमेश, लौलिश, च्यवन, यवन, भृगु और शौनक। ये ज्योतिष शास्त्र के प्रणेता रहे।

ज्योतिष का उदभव स्थान और काल – यदि पक्षपात छोड़कर विचार किया जाये तो स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि अन्य शास्त्रों के समान भारतीय इस शास्त्र के आदि अविष्कारकर्त्ता

हैं। योगविज्ञान, जो कि भारतीय आचार्यों की विभूति माना जाता है, इसका पृष्ठाचार है। यहाँ के ऋषियों ने योगाभ्यास द्वारा अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौर मण्डल की व्यवस्था की।[2] अंक विद्या जो इस शास्त्र का प्राण है, उसका आरम्भ भी भारत में ही हुआ है। मध्यकालीन भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक में श्री ओझाजी ने लिखा है– भारत ने अन्य देशवासियों को जो अनेक बातें सिखायीं, उनमें सबसे अधिक महत्व अंक विद्या का है।

संसार–भर में गणित, ज्योतिष विज्ञान आदि की आज जो उन्नति पायी जाती है, उसका मूल कारण वर्तमान अंक–क्रम है, जिसमें 1–9 तक के अंक और शून्य इन 10 चिह्नों से अंक विद्या का सारा काम चल रहा है। यह क्रम भारतवासियों ने ही निकाला और सारे संसार ने अपनाया।[3]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल में भारतीय ऋषि खगोल और ज्योतिषशास्त्र से परिचित थे। कुछ लोग भारतीय ज्योतिष में ग्रीक शब्दों का सम्मिश्रण होने के कारण तथा प्राचीन भारतीय ज्योतिष में मेष, वृष आदि 12 राशियों एवं मंगल, बुध, गुरू इत्यादि ग्रहों के नामों का स्पष्ट उल्लेख न मिलने के कारण उसे ग्रीस से आया हुआ बताते हैं, परन्तु विचार करने पर वास्तविक बात ऐसी प्रतीत नहीं होगी। क्योंकि उन लोगों ने आगत शब्दों के प्रमाण में होरा (लग्न और राशि भाग) हिबुक (जन्मकुण्डली का चतुर्थ भाव) आपोक्लीम् द्रेष्काण (राशि का तृतीयांश) कण्टक (चतुर्थ भाव) पणफर अनफा, सुनफा, दुरधरा (योगविशेष), तुंग (उच्च स्थान) मुसल्ल (नवमांश) मुन्था (जन्मलग्न स्थित) किसी भी अभीष्ट वर्ष की राशि) इन्दुवार ईशराफ इत्यादि योग विशेष को उपस्थित किया।

यह सब संचित कहलाता है। अनेक जन्मों के संचित कर्मों को एक साथ भोगना सम्भव नहीं है; क्योंकि इनसे मिलने वाला परिणामस्वरूप फल परस्पर–विरोधी होता है। अतः इन्हें एक के बाद एक कर भोगना पड़ता है। संचित में से जितने कर्मों के फल को पहले भोगना शुरू होता है, उतने ही प्रारब्ध होते हैं या कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि संचित अर्थात् समस्त जन्म जन्मान्तरों के कर्मों के संग्रह में से एक छोटे–भेद को प्रारब्ध कहते हैं। यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि समस्त संचित का नाम प्रारब्ध नहीं बल्कि

---

[2] भारतीय ज्योतिष पृ0 27

[3] मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृ0–108

जितने भाग का भोगना आरम्भ हो गया है, प्रारब्ध है। जो कर्म अभी हो रहा है या जो अभी किया जा रहा है, वह क्रियमाण है। इस प्रकार इन तीन तरह के कर्मों के कारण आत्मा अनेक जन्मो–पर्यायों को धारण कर संस्कार अर्जन करता चला आ रहा है।

आत्मा के साथ अनादिकालीन कर्म–प्रवाह के काण लिंग शरीर, कार्मण शरीर और भौतिक स्थूल शरीर का सम्बन्ध है। जब एक स्थान से आत्मा इस भौतिक शरीर का त्याग करता है तो लिंग शरीर उसे अन्य स्थूल शरीर की प्राप्ति में सहायक होता है। इस स्थूल भौतिक शरीर में विशेषता यह है कि इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म–जन्मांतरों के संस्कारों की निश्चित स्मृति को खो देता है। इसलिए ज्योर्तिविदों ने प्राकृतिक ज्योतिष के आधार पर कहा है कि आत्मा मनुष्य के वर्तमान स्थूल शरीर में रहते हुए भी एक से अधिक जगत के साथ सम्बन्ध रखता है। मानव का भौतिक शरीर प्रधानतः ज्योतिः, मानसिक और पौद्गलिक इन तीनों उपशरीरों में विभक्त है। यह ज्योतिः शरीर उपशरीर Astrals's body द्वारा

मानव–जीवन और भारतीय ज्योतिष

मनुष्य स्वभाव से ही अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। इसकी हसी प्रवृत्ति ने ज्योतिष के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य किया है। फलतः वह अपने जीवन के भीतर ज्योतिा तत्वों का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है। इसी कारण वह शास्त्रीय एवं व्यवहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभव को, ज्योतिष की कसौटी पर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिष का जीवन में क्या स्थान है?

समस्त भारतीय ज्ञान की पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है, यही कारण है कि भारत अन्य प्रकार के ज्ञान को दार्शनिक मापदण्ड द्वारा मापता है। इसी अटल सिद्धान्त के अनुसार वह ज्योतिष को भी इसी दृष्टिकोण से देखता है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है, इसका नाश कभी नहीं होता है, केवल यह कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण पर्यायों को बदला करता है। अध्यात्मशास्त्र का कथन है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम रूप या कर्म ही नहीं है, किन्तु इस नामरूपात्मक आवरण के लिए आधारभूत एक अरूपी स्वतन्त्र और

अविनाशी आत्मतत्व है तथा प्राणीमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्व नित्य एवं चैतन्य है, केवल कर्मबन्धन के कारण यह परतन्त्र और विनाशकी दिखलाई पड़ता है। वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण ये तीन भेद माने गये हैं। किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया जो कर्म है– चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्मों में। नाक्षत्र जगत् से, मानसिक उपशरीर विभक्त है द्वारा मानसिक जगत से और पौढ़गलिक उपशरीर द्वारा भौतिक जगत से सम्बद्ध है। अतः मानव प्रत्येक जगत से प्रभावित होता है तथा अपने शरीर में ज्ञान दर्शन, सुख वीर्य आदि अनेक शक्तियों का धारक आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथा शरीर प्रमाण रहने पर भी अपनी चैतन्य क्रियाओं द्वारा विभिन्न जगतों में अपना कार्य करता है। मनोवैज्ञानिकों ने आत्मा की इस क्रिया की विशेषता के कारण ही मनुष्य के व्यक्तित्व को वाह्य और आन्तरिक दो भागों में विभक्त किया है।

बाह्य व्यक्तित्व :– वह है, जिसने इस भौतिक शरीर के रूप में अवतार लिया है। यह आत्मा की चैतन्य क्रिया की विशेषता के कारण अपने पूर्वजन्मों के निश्चित प्रकार के विचार भाव और क्रियाओं की ओर झुकाव प्राप्त करता है तथा इस जीवन के अनुभवों के द्वारा इस व्यक्तित्व के विकास में वृद्धि होती है और यह धीरे–धीरे विकसित होकर आन्तरिक व्यक्तित्व में मिलने का प्रयास करता है।

आन्तरिक व्यक्तित्व :– वह है जो अनेक बाह्य व्यक्तियों की स्मृतियों, अनुभवों और प्रवृतियों का संश्लेषण अपने में रखता है।

बाह्य और आन्तरिक इन दोनों व्यक्तित्व सम्बन्धी चेतना के ज्योतिष में विचार अनुभव और क्रिया में तीन रूप माने जाते हैं। बाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप आन्तरिक व्यक्तित्व के इन तीनों रूपों से सम्बद्ध है। पर आन्तरिक व्यक्तित्व के तीन रूप निजी विशेषता और शक्ति रखते हैं, जिससे मनुष्य के भौतिकी, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीनों जगतों का संचालन होता है। उपर्युक्त विषयों सहित जातक के भूत+वर्तमान+भविष्य का समग्र विश्लेषण ज्योतिषशास्त्र के बिना सम्भव नहीं है।

बोधात्मक प्रश्न

प्र01– ज्योतिष .... का चक्षु है–

क) ज्ञान ख) साहित्य ग) वेद घ) उपनिषद

प्र02– कालज्ञापक शास्त्र है?

क) वेद ख) निरूक्त ग) छन्द घ) ज्योतिष

प्र03– ज्योतिष के स्कन्ध हैं............?

क) पाँच ख) तीन ग) सात घ)नौ

प्र04– सिद्धान्त, संहिता, होरा कहलाते हैं?

क) स्कन्धत्रय ख) उपनिषद ग) प्रस्थानत्रयी

1.4 सारांश

भूर्ग्रहभानां गोलार्धानि स्वछायचा विवर्णानि।

अर्धानि यथासारं सूर्याभिमुखानि हीप्यन्ते।।

अखिल ब्रह्माण्ड में जो तेजोमय (प्रकाशयुक्त) बिम्ब दिखाई देते हैं उन सबका सम्बन्ध न केवल मानवों के साथ है, अपितु समस्त चराचर सृष्टि सम्पूर्ण पृथ्वी, ब्रह्माण्ड के साथ भी है। जिस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि में सृजन के पश्चात् लय होता है, प्रत्येक जीवों का जन्म–मृत्यु जरा–ब्याधि लाभालाभ, जय–पराजय ये समस्त घटना ग्रहाधीन है।

जिस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया में पन्चमहाभूतों का महत्व है, तदनुरूप ज्योतिष शास्त्र में भी जगतोत्पत्ति व सृष्टि प्रक्रिया की चर्चा है, पंचमहाभूत जगतनिर्माण में अपना प्रतिनिधित्व करते हैं उसी प्रकार इन पंचमहाभूतों के भी प्रतिनिधित्व ग्रह हैं। यथा–

अग्निसोमौ भानुचन्द्रौ ततस्वतङ्गणरकादयः।

तेजोमुखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पंचयज्ञिरे।।

सृष्टि संरक्षण के प्रसंग में आचार्य सुश्रुतने सूर्य चन्द्रमा के प्रभाव को विलक्षण रीति से ग्रहण किया है, चन्द्रमा भूमि को आद्राता प्रदान करता है (शीतता) सूर्य शीतता को शोषित करता है, (सुखाता है) और दोनों से वायु प्रजा की रक्षा करता है। तात्पर्य यह है कि इस समस्त चराचर जगत में ग्रहों का विलक्षण प्रभाव देखा जाता है। अतः ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान से ही हम इस प्रभावमयी घटनाओं से परिचित हो पाते हैं।

1.5 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

प्र01– (ग)

प्र02– (घ)

प्र03– (ख)

प्र04– (क)

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ज्योतिषशास्त्र

वेदांग ज्योतिष

ज्योतिष सर्वस्व

भारतीय कुण्डली विज्ञान

1.7 सहायक पाठ्यसामग्री

भारतीय कुण्डली विज्ञान

भारतीय ज्योतिष

ज्योतिष प्रबोध

शीघ्र बोध

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01– ज्योतिष शास्त्र काल ज्ञापक है, सिद्ध कीजिये?

प्र02– होरा शास्त्र में विचारणीय विषयों का प्रतिपादन?

प्र03– संहितागत विषयों का विवेचन कीजिये?

प्र04– सिद्धान्तगत विषयों का विवेचन कीजिये।

इकाई – 2 काल एवं पंचांग परिचय

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 काल का स्वरूप व विभाजन
 2.3.1 काल परिचय
 2.3.2 ब्रह्म का परिचय
2.4 भारतीय वर्षमान पद्धति
2.5 सारांश
2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक पाठ्यसामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई डी0वी0एस0–102 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– ''काल एवं पंचांग परिचय''। इससे पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिष शास्त्र के परिचय, सिद्धान्त–संहिता–होरा का अध्ययन कर लिया है, अब इसी क्रम में आप काल और पंचांग का अध्ययन करने जा रहे हैं।

2.2 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- जान पायेंगे कि ज्योतिष शास्त्र में काल किसे कहते हैं, उसके कितने भेद हैं?
- साथ ही काल की परिभाषा से भी परिचय कर पायेंगे
- पंचांग क्या है, इसका प्रयोजन व महत्व को भी समझेंगे
- पंचांग कैसे देखें व कुछ दैनिक परिभाषित तथ्यों से भी परिचय कर सकेंगे।

2.3 काल का स्वरूप व विभाजन

काल ही मनुष्य के सुख–दुःख जीवन मरण, लोक–परलोक एवं उत्थान–पतन का नियामक होता है। काल ही से मनुष्य उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है–

''कालः सृजति भूतानि कालः संहरिति प्रजाः'

काल के दो रूप कहे जा सकते हैं। एक अनादि, अनन्त एवं असीम महाकाल है। वह कितना बड़ा है? गिना नहीं जा सकता है। विश्वोत्पति से पूर्व भी इसका अस्तित्व था, और भविष्य में भी सर्वदा रहेगा।

''चक्रवत् परिवर्तते कालः सूर्यवशात्।।''

मानव जीवन को नियमित एवं सुव्यवस्थित रूप निर्धारण करने के लिए ही हमारे पूर्वाचार्यों ने व्यवहारिक कालमान का प्रणयन किया है। भचक्र में भ्रमण करते हुए सूर्य के

एक चक्र को वर्ष की संज्ञा दी गई है। व्यवहारिक रूप में वर्षमान की सूक्ष्मतम इकाई को क्षण विपल या सैकेण्ड कहते हैं। भारतीय पद्धति में घट्यादि की सूक्ष्म काल गणना इस प्रकार से की गई है–

काल भेद :– निमेष–पलक झपकने में जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं। तीन (3) निमेष का एक क्षण होता है। 5 क्षण की एक काष्ठ तथा 15 काष्ठ की 1 लघु एवं 15 लघु की 1 घडी होती है।

इसी भांति 10 बार गुरू अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे 1 प्राण अथवा 1 असु कहते हैं। 3 = निमेष = 1 त्रुटि = 24 सेकैण्ड = 1 विपल।

2.3.1 काल (समय) परिचय

1 भास्करीय गोल मीमांसा + सूर्य सि0

2 परमाणु = 1 अणु (अति सूक्ष्म)

3 परमाणु = 1 त्राण

3 त्राण = 1 त्रुटि

100 त्रुटि = 1 वेध

3 वेध = 1 लव

3 लव = 1 निमेष (0.444........विपल) = 1 सेकैण्ड का (0.17777.......) वाँ भाग

यह गणना 1 सेकेण्ड से पहले की है–

18 निमेष = 1 काष्ठा = 8 विपल (3.2 सेकेण्ड)

30 काष्ठा (8विपल) = 1 कला, 4 पल, 1.6 मिनट

30 कला = 1 मुहूर्त, 2 घटी या 48 मिनट

30 मुहूर्त = 1 दिन, 60 घटी (24 घण्टे)

15 दिन = 1 पक्ष

2 पक्ष = 1 मास (महीना)

6 महीना = 1 अयन

2 अयन = 1 वर्ष = सौर वर्ष = (1 दिव्य दिन)

360 सौर वर्ष =1 दिव्य दिन

1200 दिव्य वर्ष = कलियुग

2400 दिव्य वर्ष = द्वापर युग

3600 दिव्य वर्ष = त्रेतायुग

4800 दिव्य वर्ष = सतयुग (कृतयुग)

12000 दिव्य वर्ष =एक महायुग

71 महायुग = 1 मनु (मन्वन्तर) सन्धिकाल सहित खण्ड प्रलय)

864000000000X360 (सौरवर्ष हेतु)

311040000000000 सौर वर्ष ब्रह्म आयु

जब मनु की समाप्ति हो जाती है और दूसरा मनु प्रारम्भ होता है तो उस बीच के समय को सन्धि काल कहते हैं।

1 सन्धिकाल = 4800 दिव्य वर्ष

14 मन्वन्तर = 1 कल्प

14X71 = 994 + (15 सन्धियाँ = 4800 X 15 72000 दिव्य वर्ष)

72000 ÷ 12000 = 6 महायुग 994 + 6 = 1000 महायुग

1000 मह्युयग 1 कल्प ब्रह्म का दिन, 1 कल्प ब्रह्मा की रात्रि, इस तरह 2 कल्प का एक ब्रह्म अहोरात्र (रातदिन) होता है।

2.3.2 ब्रह्म का समय

720 कल्प = ब्रह्म वर्ष

720 X 100 = 72000 कल्प = ब्रह्म आयु

एक कल्प 1000 महायुग 12000 दिव्य वर्ष X 1000

अतः एक कल्प = 12000000 दिव्य वर्ष 120,00000 दिव्य वर्ष।

तो 72000 कल्प = 12000000 X 72000 = 864000000000 दिव्य वर्ष।

महाप्रलय ये हमारे वर्षों के अनुसार ब्रह्मा की आयु है और अभी तक ब्रह्मा अपनी आयु का आधा भाग भोग कर चुका है, आधा अभी बाकी है।

उपरोक्त वर्णित 14 मन्वन्तरों में प्रत्येक मन्वन्तर का एक–एक अलग मनु होता है। इस मसय वैवस्वत नामक सातवां मन्वन्तर बीत रहा है तथा छः (6) मन्वन्तरा बीत चुके हैं। और ..... महायुगों में से 27 महायुग बीत चुके हैं। 28वाँ महायुग के 3 युग (सत, त्रेता, द्वापर) बीत गये हैं। तथा कलियुग का प्रथम चरण प्रारम्भ हो चुका है।

कलियुग की उत्पत्ति – विक्रमी सम्वत् 2043 में कलियुग के कुलवर्ष प्रमाण (4 लाख 32 हजार वर्ष) में से 5087 वर्ष बीत चुके हैं जबकि सृष्टि प्रारम्भ हुए 1955885087 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस प्रकार वर्तमान समय में ब्रह्मा का द्वितीय प्रहर श्वेतावाराह कल्प और वैवस्वत नामक सातवां मनु (मन्वंतर) एवं 28वें महायुग के अन्तर्गत तीन (सतयुगादि) बीत कर कलयुग का प्रथम चरण व्यतीत हो रहा है। यह यज्ञ, हवन संकल्पादि के प्रारम्भ में इसी कालावधि का संस्मरण किया जाता है।

''कलियुग की उत्पत्ति'' सन् ईसवी शुरू होने से 3102 वर्ष पुर्व 18 फरवरी भाद्रपदमास, कृष्णपक्ष, त्रयोदशी तिथि, रविवार, आश्लेषा नक्षत्र, व्यतीपात योग से अर्द्धरात्रि के समय हुई थी। विक्रमी सम्वत् से 2045 वर्ष पूर्व कलियुग की उत्पत्ति मानी जाती है। कलियुग से अद्यावधि पर्यन्त बीते वर्षों को कलि संवत् कहते हैं।

कलियुग से 3045 वर्ष पर्यन्त युधिष्ठर सम्वत् का प्रचलन रहा फिर विक्रम सम्वत् का शुभारम्भ हुआ। इसका आरम्भ काल ईसा से 57 वर्ष पूर्व चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा तिथि से माना जाता है पंचांग पद्धति में बहुधा इसका प्रयोग किया जाता है। विक्रम सम्वत् चान्द्र मास आधारित होने पर भी इसमें सौरमासों का समावेश रहता है। शक सम्वत्–वि0 सम्वत् के 135 वर्ष पश्चात् राजा शालिवाहन ने इसका प्रचलन आरम्भ किया। भारत सरकार ने भी इसी संवत् को मान्यता प्रदान की है। परन्तु यह संवत् अभी अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है। इसमें भी चैत्र, वैसाखादि मासों की गणना की जाती है। परन्तु इसका आरम्भ चैत्र (प्रायः 22 मार्च) से किया जाता है। भारत में इनके अतिरिक्त अनेक सन्–सम्वतों का प्रचलन प्रादेशिक परिस्थितिवश अथवा किसी दिव्य महापुरूष के युग नाम एवं जन्मकाल के

आधार पर होता चला आ रहा है।

2.4 भारतीय वर्षमान पद्धति

भारतीय पूर्वाचार्यों ने पाँच प्रकार के वर्षमान ही मुख्यतः व्यवहार्य हैं– (1) सौर, (2) चान्द्र, (3) नाक्षत्र, (4) सावन एवं (5) बाहर्स्पव्य।

सौरवर्ष :– जितने काल में सूर्य मेषादि द्वादश राशियों (एक भचक्र का भ्रमण करता है, उसे सौर वर्ष कहते हैं) एवं जितने दिनों में सूर्य एक राशि (अथवा 30 अंश) का भ्रमण करता है, उसे सौर मास तथा जितने काल में सूर्य 1 अंश पूरा करता है उसे सौर दिन कहते हैं। एक सौर वर्ष में 365 दिन 15 घड़ी, 22 पल और 57 विपल होते हैं। सूर्य द्वारा एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश काल को क्रान्ति कहते हैं।

चान्द्रवर्ष :– जितने काल में चन्द्रमा भचक्र के 12 चक्र के 12 चक्र काटता है, उसे चान्द्रवर्ष एवं जितने समय में चन्द्रमा भचक्र का एक चक्र काटता है, उसे चान्द्रमास तथा जितने काल में चन्द्रमा भचक्र के 12 अंशों (एवं 1 तिथि) को पूर्ण करता है, उसे चान्द्र दिन कहते हैं। एक चान्द्रमास 29 दिन, 21 घड़ी 50 पल एवं 7(1) विपल का है।

नक्षत्र वर्ष :– चन्द्रमा द्वारा एक नक्षत्र के भोगकाल को नाक्षत्र दिन और चन्द्रमा द्वारा 27 नक्षत्रों के भोग्यकाल को नाक्षत्रमस तथा 12 नाक्षत्र मासों का एक नाक्षत्र वर्ष होता है। एक नाक्षत्र वर्ष प्रायः 324 दिनों का होता है।

सावन वर्ष :– एक सूर्योदय से आगामी दिवस के सूर्योदय तक की काल अवधि को सावन दिन 30 सावन दिनों की अवधि को एक सावन मास और 12 सावन मासों का एक सावन वर्ष होता है। सावन वर्ष 360 दिनों का होता है।

(12 राशियाँ (1) (भचक्र) = 360 अंश 1 अंश = 60 कला

1 राशि = 30 अंश 1 कला = 60 विकला

वाहर्स्पत्य वर्ष :– बृहस्पति मध्यम गति से जितने समय में एक राशि का भगण करता है, उसे वाहर्स्पत्य वर्ष कहते हैं, इसको संवत्सर भी कहते हैं। वाहस्पर्त्य मान से संवत्सरों की संख्या 60 मानी जाती है। महीनों की भांति इनका क्रम निश्चित भी है। जैसे– प्रभव, विभव,

शुक्ल इत्यादि।

गोलार्द्ध, अयन और ऋतुएँ

गोलार्द्ध पृथ्वी के ऊपर व्याप्त आकाश मण्डल के उत्तरी ध्रुव में स्थित अर्द्ध–भाग को उत्तरी गोलार्द्ध तथा शेष द्वितीय अर्द्धभाग को दक्षिणी गोलार्द्ध कहते हैं। सूर्य जब सायन मेष राशि से कन्या पर्यन्त होता है, तो उसे समय वह उत्तरी गोलार्द्ध तथा जब सायन तुला से मीन राशि पर्यन्त रहता है तो दक्षिणी गोलार्द्ध स्थित कहलाता है।

उत्तरायण–दक्षिणायन :– निरयण सूर्य जब मकर राशि से मिथुन राशि पर्यन्त रहता है, तब उत्तरायण तथा जब सूर्य कर्क राशि पर्यन्त संचारित रहता है, तब सूर्य दक्षिणायन स्थित कहलाता है। भारतीय परम्परानुसार उत्तरायण को देवताओं का दिन दक्षिणायन में देवताओं की रात्रि मानी जाती है। उत्तरायण में देवताओं की प्रतिष्ठा, यज्ञ, व्रतोद्यापन मुण्डनादि कृत्य करना शुभ माना जाता है।

ऋतुएँ :– भारतीय परिवेश एवं वातावरण के अनुकूल एक वर्ष एवं द्वादश मासों में छः ऋतुएँ होती हैं। यह छः ऋतुएँ इस प्रकार हैं– बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतु। शिशिर को पतझड़ भी कहते हैं। चान्द्र एवं सौर मासों में ऋतुओं का क्रम इस प्रकार से है–

ऋतुएँ	बसन्त	ग्रीष्म	वर्षा	शरद	हेमन्त	शिशिर
सौरमास एवं राशियाँ	मीन, मेष	वृष, मिथुन	कर्क, सिंह	कन्या–तुला	वृश्चिक–धनु	मकर–कुम्भ
चान्द्रमास	चैत्र–वैशाख	ज्येष्ठ–आषाढ़	श्रावण–भाद्र	आश्विन–कार्तिक	मार्ग0–पौष	माघ–फाल्गुन

पक्ष :– एक चान्द्रमास में दो पक्ष होते हैं। शुक्ल पक्ष (सुदी) और कृष्ण पक्ष (वदि) एक वर्ष में प्रायः 24 पक्ष होते हैं। प्रायः प्रति 3 वर्ष अधिक मास पड़ने से 26 पक्ष हो जाते हैं। एक पक्ष औसतन 15 दिन का होता है। कभी–कभी तिथि क्षय अथवा तिथि वृद्ध के कारण दिन में न्यूनाधिकता भी हो जाती है। इस प्रकार काल (समय) का सर्वरूप ज्योतिषशास्त्र में निहित है, जो कि बहुउपयोगी है।

पंचांग परिचय :– ''**पंचानां अंगानां समाहारः पंचांगमित्युच्यते**'' एक पंचांग में ग्रह– गणित, व्रत, पर्वादि विषयों के अतिरिक्त पांच अंगों का मुख्यतः समावेश रहता है। ये पांच अंग इस प्रकार हैं– (1) तिथि, (2) वार, (3) नक्षत्र, (4) योग, (5) करण। किसी समय को अभिव्यक्त करने के लिए पंचांग द्वारा इन्हीं पांच अंगों का विवेचन जिस विद्या द्वारा होता है, उसे पंचांग (पंच + अंग) कहते हैं।

प्रत्येक पंचांग किसी स्थान विशेष के अक्षांश–रेखांश पर आधारित होता है। उसमें स्थानीय सूर्योदय, सूर्यास्त, दिनमान, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण ग्रहों का स्पष्टीकरण का विशेष परिचय दिया जाता है।

दिनमान :– सूर्योदय से सूर्यास्त तक की समयावधि को दिनमान कहते हैं। प्राप्त घण्टों मिनटों को अढाई गुणा कर देने से घ्यच्यादि दिनमान होगा। 60 घड़ी में से दिनमान कम करने से रात्रिमान निकल आता है। प्रत्येक अक्षांश पर सूर्योदयास्त भिन्न–भिन्न काल पर आता है। अतः वहाँ के दिनमान में भी भिन्नता होती है। सूर्य उत्तरायण में रहने पर दिनमान अधिक तथा रात्रिमान कम होता है। अतः जबकि दक्षिणायन में इसके विपरीत–दिनमान कम तथा रात्रिमान अधिक होता है। वर्ष में केवल दो बार दिनमान व रात्रिमान बराबर होते हैं। 21 मार्च और 23 सितम्बर इन दिनों दिन रात बराबर होते हैं।

तिथि :– जितने काल में चन्द्रमा भचक्र के 12 अंशों का भ्रमण कर लेता है, उसे एक तिथि (या चान्द्र दिन) कहते हैं। चन्द्र की गति सूर्य की गति से अधिक है। जब दोनों का अन्तर बढ़ने लगता है, तो 1 तिथि का आरम्भ होने लगता है। अर्थात् प्रतिपदा तिथि का आरम्भ होने लगता है। जब यह अन्तर बढ़ते–बढ़ते बारह अंश का हो जाता है। तब प्रतिपदा तिथि पूर्ण हो जाती है और द्वितीया शुरू हो जाती है। जब सूर्यांशों से चन्द्रमा का अन्तर 24 अंश हो जाता है तो द्वितीया तिथि पूर्ण हो जाती है। इसी भांति जब चन्द्रमा सूर्य से 12 X 15 = 180 अंश आगे हो जाता है तब पूर्णिमा तिथि समाप्त होती है और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा का आरम्भ होता है। जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर 360 अंश अर्थात् शून्य हो जाता है तब उस अवस्था को अमावस्या तिथि कहते हैं। इस प्रकार 30 तिथियों (एवं 360 अंशों) के एक सम्पूर्ण परिभ्रमण को चान्द्रमास कहते हैं। इस क्रम की निरन्तर पुनरावृत्ति होती रहती है।

तिथि वृद्धि एवं क्षयत्व :– चन्द्रमा और सूर्य की गतियों व असमानता के कारण तिथियों का मान भी सदा समान नहीं होता। जब चन्द्र की गति बहुत कम होगी, तो तिथि का मान 60 घड़ी अधिक होकर आगामी सूर्योदय के उपरान्त भी तिथि का अस्तित्व बना रहता है तो उसे तिथि वृद्धि कहते हैं। कभी–कभी चन्द्रमा तीव्र गति के कारण एक ही दिन में दो तिथियों का समावेश हो जाता है (यानि आगामी सूर्योदय से पूर्व ही दूसरी तिथि समाप्त हो जाती है)। इस स्थिति को अवम एवं तिथिक्षय कहते हैं।

प्रायः एक पक्ष 15 दिन का होता है। कभी–कभी तिथि वृद्धि के कारण न्यूनाधिक भी हो जाता है। परन्तु एक ही पक्ष में बार तिथि क्षय हो जाने से 13 दिनों का पक्ष समस्त शुभकार्यों में वर्जनीय होता है।

तिथियों के नाम व सूचक अंकों को निम्नलिखित क्रमानुसार जानें–

शुक्लपक्ष की तिथियाँ

क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से क्रम तिथि सूर्यांश से चन्द्र की दूरी	क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से क्रम तिथि सूर्यांश से चन्द्र की दूरी
1	प्रतिपदा 0 अंश से 12 अंश तक	9	नवमी 96 अंश से 108 अंश तक
2	द्वितीया 12 अंश से 24 अंश तक	10	दशमी 108 अंश से 120 अंश तक
3	तृतीया 24 अंश से 36 अंश तक	11	एकादशी 120 अंश से 132 अंश तक
4	चतुर्थी 36 अंश से 48 अंश तक	12	द्वादशी 132 अंश से 144 अंश तक
5	पंचमी 48 अंश से 60 अंश तक	13	त्रयोदशी 144 अंश से 156 अंश तक
6	षष्ठी 60 अंश से 72 अंश तक	14	चतुर्दशी 156 अंश से 168 अंश तक
7	सप्तमी 72 अंश से 84 अंश तक	15	पूर्णिमा 168 अंश से 180 अंश तक
8	अष्टमी 84 अंश से 96 अंश तक		

कृष्णपक्ष की तिथियाँ

क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से क्रम तिथि सूर्यांश से चन्द्र की दूरी	क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से क्रम तिथि सूर्यांश से चन्द्र की दूरी
1	प्रतिपदा 180 अंश से 192 अंश	9	नवमी 276 अंश से 288 अंश तक
2	तक	10	दशमी 288 अंश से 300 अंश तक

3	द्वितीया 192 अंश से 204 अंश तक	11	एकादशी 300 अंश से 312 अंश तक
4	तृतीया 204 अंश से 216 अंश तक	12	द्वादशी 312 अंश से 324 अंश तक
5	चतुर्थी 216 अंश से 228 अंश तक	13	त्रयोदशी 324 अंश से 336 अंश तक
6	पंचमी 228 अंश से 240 अंश तक	14	चतुर्दशी 336 अंश से 348 अंश तक
7	षष्ठी 240 अंश से 252 अंश तक	15	अमावस 348 अंश से 360 अंश तक
8	सप्तमी 252 अंश से 264 अंश तक		
	अष्टमी 264 अंश से 276 अंश तक		

उदाहरणार्थ – आप विक्रमी संवत् 2043 के पंचांग दिवाकर प्रविष्टे 12 वैसाख (24 अप्रैल के सामने वाली पंक्ति में पूर्णिमा तिथि की समाप्ति 31/37 घट्यादि (तदनुसार सायं 6 बजकर 31 मिनट) पर हुई है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्योदय से 31/37 घट्यादि पर सूर्य का चन्द्रमा से अन्तर ठीक 180 अंश हो जायेगा। इसी प्रकार अन्य सभी तिथियों का मान जानें। ध्यान रहे पंचांगों में तिथियों का जो घट्यादि में मान लिखा जाता है। वह उनका समाप्तिकाल होता है। यदि तिथि का काल ज्ञात करना हो तो गत तिथि को 60 में से हीन करके शेष को वर्तमान तिथि में जमा कर देने से तिथि का कुल मान निकल आयेगा।

कृष्णपक्ष की तिथियाँ

क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से चन्द्र की क्रम तिथि दूरी	क्र0	तिथि नाम सूर्यांश से चन्द्र की क्रम तिथि दूरी
1	प्रतिपदा 180 अंश से 192 अंश	9	नवमी 276 अंश से 288 अंश तक
2	तक	10	दशमी 288 अंश से 300 अंश तक
3	द्वितीया 192 अंश से 204 अंश तक	11	एकादशी 300 अंश से 312 अंश तक
4	तृतीया 204 अंश से 216 अंश तक	12	द्वादशी 312 अंश से 324 अंश तक
5	चतुर्थी 216 अंश से 228 अंश तक	13	त्रयोदशी 324 अंश से 336 अंश तक
6	पंचमी 228 अंश से 240 अंश तक	14	चतुर्दशी 336 अंश से 348 अंश तक
7	षष्ठी 240 अंश से 252 अंश तक	15	अमावस 348 अंश से 360 अंश तक

8	सप्तमी 252 अंश से 264 अंश तक अष्टमी 264 अंश से 276 अंश तक		360 अंश का सूर्य चन्द्रातर होने पर अन्तर शून्य रह जाता है।

तिथियों के स्वामी :– प्रतिपदा का स्वामी अग्नि, द्वितीया का ब्रह्मा, तृतीया का गौरी, चतुर्थी का गणेश, पंचमी का शेषनाग्, षष्ठी का कार्तिकेय, सप्तमी का सूर्य, अष्टमी का शिव, नवमी की दुर्गा, दशमी का काल्, एकादशी के विश्वेदेव, द्वादशी का विष्णु, त्रयोदशी का कामदेव, चतुर्दशी का शिव, पौर्णमासी का चन्द्रमा और अमावस्या के पितर हैं। तिथियों के शुभाशुभत्व के अवसर पर स्वामियों का विचार किया जाता है।

''तिथिशावह्निकोऽगौरी गणेशोऽर्हिग्रहोरविः।
शिसवोदुर्गाऽन्तको विश्वे हर्रिकायोशिवशशिः।।

अमावस्या के तीन भेद हैं – सिनीवाली, दर्श और कुहु। प्रातः काल से लेकर रात्रि तक रहने वाली अमावस्या को सिनीवाली चतुर्दशी से विद्ध को दर्श एवं प्रतिपदा से युक्त अमावस्या को कुहु कहते हैं।

तिथियों की संज्ञाएँ :– 1/6/11 नन्दा, 2/7/12 भद्रा, 3/8/13 जया, 4/9/14 रिक्ता और 5/10/15 पूर्णा तथा 4/6/8/9/12/14 तिथियाँ पक्षरन्ध्र संज्ञक हैं।

नक्षत्र :– कई ताराओं के समुदाय को नक्षत्र कहते हैं। आकाश–मण्डल में जो असंख्यात तारिकाओं से कहीं अश्व, शकट, सर्प, हाथ आदि के आकार बन जाते हैं, वे ही नक्षत्र कहलाते हैं। जिस प्रकार लोक–व्यवहार में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी मीलों या कोसों में नापी जाती है उसी प्रकार आकाश–मण्डल की दूरी नक्षत्रों से ज्ञात की जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे कोई पूछे कि अमुक घटना सड़क पर कहाँ घटी तो यही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक स्थान से इतने कोस या मील चलने पर उसी प्रकार अमुक ग्रह आकाश में कहाँ है, तो इस प्रश्न का भी वही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक नक्षत्र में। समस्त आकाश–मण्डल को ज्योतिषशास्त्र ने 27 भागों में विभक्त कर प्रत्येक नक्षत्र के भी चार भाग किये गये हैं, जो चरण कहलाते हैं।

(1) अश्विनी, (2) भरनी, (3) कृतिका, (4) रोहिणी, (5) मृगशिरा, (6) आर्द्रा, (7) पुनर्वसु, (8) पुष्य, (9) आश्लेषा, (10) मघा, (11) पूर्णाफालगुनी, (12) उत्तराफालगुनी, (13)

हस्त, (14)चित्रा, (15) स्वाति, (16) विशाखा, (17) अनुराधा, (18) ज्येष्ठा, (19) मूल, (20) पूर्वाषाठा, (21) उत्तराषाठा, (22) श्रवण, (23) घनिष्ठा, (24) शतभिषा, (25) पूर्वाभाद्रपद, (26) उत्तराभाद्रपद, (27) रेवती।

अभिजित को भी 28 वाँ नक्षत्र माना गया है। ज्योतिर्विदों का अभिमत है कि उत्तराषाठा की आखिरी 15 घडियाँ और श्रवण के प्रारम्भ की चार घड़ियाँ इस प्रकार 19 घड़ियों के ममवाला अभिजित नक्षत्र होता है। यह समस्त कार्यों में शुभ माना जाता है।

नक्षत्रों के स्वामी :– अश्विनी का अश्विनी कुमार भरणी का काल कृतिका का अग्नि, रोहिणी का ब्रह्मा, मृगशिरा का चन्द्रमा, आर्द्रा का रूद्र, पुनर्वसु का अदिति, पुष्य का वृहस्पति, आश्लेषा का सर्प, मद्या का पित्तर, पूर्वाफालगुनी का भग, उत्तराफालगुनी का अर्यमा, हरन्त का सूर्य, चित्रा का विश्वकर्मा, स्वाति का पवन, विशाखा का शुक्राग्नि, अनुराधा का मित्र, ज्येष्ठा का इन्द्र, मूल का निभृति, पूर्वाषाठा का जल, उत्तराषाठा का विश्वेदेव, श्रवण का विष्णु, घनिष्ठा का वसु, शतभिषा का वरूण, पूर्वाभाद्रपद का अलैकपाद, उत्तराभाद्रपद का अहिर्बुध्न्य, रेवती ाक पूषा एवं अभिजित का ब्रह्मा स्वामी है। नक्षत्रों का फलादेश भी स्वामियों के स्वभाव–गुण के अनुसार जानना चाहिए।

पंचक संज्ञक :– घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों में पंचक दोष माना जाता है।

मूल संज्ञक :– ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, मूल, मद्या और आश्विनी ये नक्षत्र मूलसंज्ञक हैं। इनमें यदि बालक उत्पन्न होता है तो 27 दिन के पश्चात् जब वही नक्षत्र आ जाता है तब शान्ति करायी जाती है। इन नक्षत्रों में ज्येष्ठा और मूल गण्डान्त मूल संज्ञक तथा आश्लेषा सर्पमूलसंज्ञक हैं।

ध्रुवसंज्ञक :– उत्तराफालगुनी, उत्तराषाठा, उत्तराभाद्रपद व रोहिणी ध्रुवसंज्ञक है।

चरसंज्ञक :– स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धमिपठा और शतभिषा चर या चल संज्ञक हैं।

उग्रसंज्ञक :– स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, घनिष्ठा और शतभिषा चर या चल संज्ञक है।

मिश्रसंज्ञक :– विशाखा और कृतिका मिश्रसंज्ञक हैं।

लघुसंज्ञक :– हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित क्षिप्र संज्ञक लघुसंज्ञक हैं।

मृदु संज्ञक :– मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्र संज्ञक हैं।

तीक्ष्णसंज्ञक :– मूल, जयेष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारूण संज्ञक हैं।

अधोमुख संज्ञक :– मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृतिका, पूर्वाफालगुनी, पूर्वाषाठा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मद्या अधोमुख संज्ञक हैं। इनमें कुआँ या नींव खोदना शुभ माना जाता है।

ऊर्ध्वमुख संज्ञक :– आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, घनिष्ठा और शतभिषा ऊर्ध्वमुख संज्ञक हैं।

तिर्यङ्मुख संज्ञक :– अनुराधा, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी तिर्यङ्मुख संज्ञक हैं।

दग्ध संज्ञक :– रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा मंगलवार को उत्तराषाठा, बुधवार को घनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा एवं शनिवार को रेवती दग्धसंज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में शुभ कार्य करना वर्जित है।

मासशून्य संज्ञक :– चैत्र में रोहिणी और अश्विनी, वैशाख में चित्रा और स्वाति ज्येष्ठा में उत्तराषाठा और पुष्य आषाढ़ में पूर्वाफालगुनी और घनिष्ठा श्रावण में उत्तराषाठा और श्रवण भाद्रपद में शतभिषा और रेवती, आश्विन में पूर्वाभाद्रपद, कार्तिक में कृतिका और मद्या, मार्गशीर्ष में चित्रा और विशाखा पौष में आर्द्रा, आश्विन और हस्त माद्य में श्रावण और मूल एवं फालगुन में भरणी और ज्येष्ठा मास शून्य नक्षत्र हैं। कार्य की सिद्धि में नक्षत्रों की संज्ञाओं का फल प्राप्त होता है।

नक्षत्रों के चरणाक्षर :– चू, चे, चो, ला आश्विनी, ली, लू, ले, लो भरणी, आ, ई, उ, ए कृतिका, ओ, वा, वी, वू रोहिणी, वे, वो, का, की मृगीशर, कू, घ, ङ, छ आर्द्रा, के, को, हा, ही पुनर्वसु, हू, हे, हो, हा पुष्य, डी, डू, डे, डो आश्लेषा, मा, मी, मू, मे मद्या, मो, टा, टी, टू पूर्वाफालगुनी, टे, टो, पा पी उत्तराफालगुनी, पू, ष, ण, ठ हस्त, प, पो, पा, रा, री चित्रा, रू, रे, रो, ता स्वाती, ती, तू, ते, तो विशाखा, ना, नी, नू, ने अनुराधा, नो, या, यी, यू ज्येष्ठा, ये, यो, भा, भी मूल, भू, धा, फा, हा पूर्वाषाठा, भे, भो, जा, जी उत्तराषाठा, खी, खू, खे, खो

श्रवण, गा, गी, गू, गे घनिष्ठा, गो, सा, सी, सू शतभिषा, से, सो, दा, दी पूर्वाभाद्रपद, इ, ध, झ, ञ उत्तराभाद्रपद, दे, दो, चा, ची रेवती।

योग :– सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़कर तथा कलाएँ बनाकर 800 का भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह अवगत किया जाता है कि वर्तमान योगों की कितनी कलाएँ बीत गई हैं। शेष को 800 में से घटाने पर वर्तमान योग की गम्य (बीती) कलाएँ आती हैं। इन गत या गम्य कलाओं को 60 से गुणा कर सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गति के योग से भग देने पर वर्तमान योग की गत और गम्य घटिकाएँ आती हैं। अभिप्राय यह है कि जब अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिलकर 800 कलाएँ आगे चल चुकते हैं तब उदो इसी प्रकार जब दोनों 12 राशियाँ 1600 कलाएँ अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब 27 योग बीतते हैं।

27 योगों के नाम इस प्रकार हैं– (1) विष्कुम्भ, (2) प्रीति, (3) आयुष्मान, (4) सौभाग्य, (5) शोभन, (6) अतिगण्ड, (7) सुकर्म, (8) धृति, (9) शूल, (10) गण्ड, (11) वृद्धि, (12) ध्रुव, (13)व्याघात, (14) हर्षण, (15) वज्र, (16) सिद्धि, (17) व्याघात, (18) वरीयान, (19) परिधि, (20)शिव, (21) शिव, (22) साध्य, (23) शुभ, (24) शुक्ल, (25) ब्रह्म, (26) ऐन्द्र, (27) वैधृति।

योगों के स्वामी :– विष्कम्भ का स्वामी यम, प्रीति का विष्णु, आयुष्मान का चन्द्रमा, सौभाग्य का ब्रह्मा, शोभन का बृहस्पति, अतिगण्ड का चन्द्रमा, सुकर्मा का इन्द्र, घृति का जल, शूल का सर्प, गण्ड का अग्नि, बृद्धि का सूर्य, ध्रुव का भूमि, व्याघात का वायु, हर्षण का भग, वज्र का वरूण, सिद्धि का कार्तिकेय, साध्य की सावित्री, शुभ की लक्ष्मी, शुक्ल की पार्वती, ब्रह्मा का अश्विनी कुमार, ऐन्द्र का पित्तर एवं वैधृति की दिति है।

करण :– तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं, अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। 11 करणों के नाम इस प्रकार हैं– (1) वब, (2) बालव, (3) कौलव, (4) तैतिल, (5) गर,

(6)वणिज, (7) विष्टि, (8) शकुनि, (9) चतुष्पद, (10) नाग, (11) किंस्तुघ्न। इन करणों में पहले के 7 करण चरसंज्ञक और अन्तिम 4 करण स्थिर संज्ञक हैं।[4]

करणों के स्वामी[5] :– बव का इन्द्र स्वामी, बालव का ब्रह्मा, कौलव का सूर्य, तैतिल का सूर्य, गर का पृथ्वी, वणिज का लक्ष्मी, विष्टि का यम, शकुनि का कलियुग, चुष्पद का रूद्र, नाग का सर्प एवं किंस्तुघ्न का वायु है।

विशेष :– तिथ्यर्द्ध भोग क्रम से कृष्ण चतुर्दशी के शेषार्द्ध से आरम्भ होकर शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्द्ध पर्यन्त शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये चार करण होते हैं। इन्हें ध्रुव कहते हैं। इनके कलि वृक्ष, फणी और मारूत स्वामी हैं।

''तृतीयादशमीशेषे तत्पंचम्योस्तु पूर्वतः। कृष्णे विष्टिः सिते तद्वससतां परतिभिष्वपि''।

कृष्णपक्ष में विष्टि – भद्रा तृतीया और दशमी तिथि के उत्तरार्द्ध में होता है। कृष्णपक्ष की सप्तमी और चतुर्दशी तिथि के पूर्वार्द्ध में विष्टि (भद्रा) करण होता है। भद्रा का समय समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य है।[6]

वार :– जिस दिन की प्रथम होरा का जो ग्रह स्वामी होता है उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार रहता है। अभिप्राय यह है कि ज्योतिषशास्त्र में शनि, बृहस्पति, मंगल, रवि, शुक्र, बुध और चन्द्रमा ये ग्रह एक दूसरे से नीचे–नीचे माने गये हैं। अर्थात् सबसे ऊपर शनि उससे नीचे बृहस्पति, उससे नीचे मंगल, मंगल के नीचे रवि इत्यादि क्रम से ग्रहों की कक्षाएँ हैं। एक दिन में 24 होराएँ होती हैं। एक–एक घण्टे की एक होरा है। प्रत्येक होरा का स्वामी अद्यः कक्षाक्रम से एक–एक ग्रह होता है। सृष्टि आरम्भ में सबसे पहले सूर्य दिखलाई पड़ता है, इसलिए प्रथम होरा का स्वामी माना जाता है। अतएव प्रथम वार का नाम भी सूर्यवार (रविवार) है। इसके अनन्तर उस दिन की 2 होरा का स्वामी समीप वाला शुक्र, 3री का बुध, 4थी का चन्द्रमा, 5वीं का शनि, 6वीं का बृहस्पति, 7वीं का मंगल, 8वीं का रवि, 9वीं का शुक्र, 10वीं का बुध, 11वीं का चन्द्रमा, 12वीं का शनि, 13वीं का बृहस्पति, 14वीं का

---

4 बवबालवैकालवतैतिलगरवणिजविष्टयः सप्त। शकुनि चतुष्पदनागस्तिुघ्नानि ध्रुवाणि करणानि।

5 बवबालवेकोलव–तैतिलगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम्। पतयः सयुरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः।।

6 सौर, वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष और अषाढ़ में भद्रा का निवास स्वर्ग लोक में होता है। फालगुन भाद्रपद चैत्र और श्रावण में मृत्युलोक में, पौष, माघ, कार्तिक और आश्विन मास में भद्रावास नागलोक में होता है।

बुध, 18वीं का चन्द्रमा, 19वीं का शनि, 20वीं का बृहस्पति, 21वीं का मंगल, 22वीं का रवि, 23वीं का शुक्र और 24वीं का बुध स्वामी होता है। पश्चात् 2रे दिन की 1 ली होरा का स्वामी चन्द्रमा पड़ता है। अतः दूसरा वार सोमवार या चन्द्रवार माना जाता है। इसी प्रकार 3रे दिन की 1ली होरा का स्वामी मंगल, 4थे दिन की 1ली होरा का स्वामी बुध, 5वें दि नकी 1ली होरा का स्वामी बृहस्पति, छठे दिन की 1ली होरा का स्वामी शुक्र एवं 7वें दिन की 1ली होरा का स्वामी शनि होता है। इसलिए क्रमशः रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र और शनि वार माने जाते हैं।

वार संज्ञाएँ :– बृहस्पति, चन्द्र, बुध, शुक्र – ये वार सौम्य संज्ञक माने जाते हैं। और मंगल रवि और शनि ये वार क्रूर संज्ञक माने गये हैं। सौम्य संज्ञक वारों में शुभ कर्म करना अच्छा माना जाता है।

रविवार स्थिर, सोमवार चर, मंगलवार उग्र, बुधवार सम, गुरूवार लघु, शुक्रवार मृदु एवं शनिवार तीच्छणसंज्ञक हैं। शल्यक्रिया के लिए शनिवार उत्तम माना गया है। विद्यारम्भ के लिए गुरूवार और वाणिज्य आरम्भ के लिए बुधवार प्रशस्त माना गया है।

बोधात्मक प्रश्न

प्र01– एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय दिवस की कालावधि को कहते हैं?

(क) चान्द्रदिन ख) सावनदिन ग) सौरदिन घ) अणुदिन

प्र02– बृहस्पति मध्यम गति से जितने समय में एक राशि का भगण करता है उसे .... कहते हैं–

(क) सावन वर्ष ख) सौर वर्ष ग) चान्द्र वर्ष घ) बार्हस्पत्य वर्ष

प्र03– तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण ये .... कहलाते हैं?

(क) ज्योतिष ख) मुहूर्त ग) पर्व घ) पंचांग

प्र04– राशियों की संख्या .... होती है?

(क) 6 ख) 3 ग) 4 घ) 12

प्र05– पाँच अंगों से युक्त को कहते हैं?

(क) पंचांग ख) मुहूर्त ग) बेला घ) काल

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि काल ही मनुष्य के सुख–दुःख जीवन मरण, लोक–परलोक एवं उत्थान–पतन का नियामक होता है। काल ही से मनुष्य उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है–''कालः सृजति भूतानि कालः संहरिति प्रजाः'। काल के दो रूप कहे जा सकते हैं। एक अनादि, अनन्त एवं असीम महाकाल है। वह कितना बड़ा है? गिना नहीं जा सकता है। विश्वोत्पति से पूर्व भी इसका अस्तित्व था, और भविष्य में भी सर्वदा रहेगा।

''चक्रवत् परिवर्तते कालः सूर्यवशात्।।''

मानव जीवन को नियमित एवं सुव्यवस्थित रूप निर्धारण करने के लिए ही हमारे पूर्वाचार्यों ने व्यवहारिक कालमान का प्रणयन किया है। भचक्र में भ्रमण करते हुए सूर्य के एक चक्र को वर्ष की संज्ञा दी गई है। व्यवहारिक रूप में वर्षमान की सूक्ष्मतम इकाई को क्षण विपल या सैकेण्ड कहते हैं।''पंचानां अंगानां समाहारः पंचांगमित्युच्यते'' एक पंचांग में ग्रह– गणित, व्रत, पर्वादि विषयों के अतिरिक्त पांच अंगों का मुख्यतः समावेश रहता है। ये पांच अंग इस प्रकार हैं– (1) तिथि, (2) वार, (3) नक्षत्र, (4) योग, (5) करण। किसी समय को अभिव्यक्त करने के लिए पंचांग द्वारा इन्हीं पांच अंगों का विवेचन जिस विद्या द्वारा होता है, उसे पंचांग (पंच + अंग) कहते हैं।

प्रत्येक पंचांग किसी स्थान विशेष के अक्षांश–रेखांश पर आधारित होता है। उसमें स्थानीय सूर्योदय, सूर्यास्त, दिनमान, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण ग्रहों का स्पष्टीकरण का विशेष परिचय दिया जाता है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.ख

2.घ

3.घ

4.घ

5.क

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय कुण्डली विज्ञान
भारतीय ज्योतिष
जातकपारिजात
वृहत्पराशरहोराशास्त्र

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

भारतीय कुण्डली विज्ञान
भारतीय ज्योतिष
जातकपारिजात
वृहत्पराशरहोराशास्त्र

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. काल का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
2. पंचांग किसे कहते है। सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।
3. वर्षमान का उल्लेख कीजिये।
4. वार एवं करण को परिभाषित करते हुए उसका विस्तृत विवेचन कीजिये।

इकाई - 3 वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वास्तु और ज्योतिष का सम्बन्ध
3.4 सारांश
3.5 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.7 सहायक पाठ्यसामग्री
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई DVS–102 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक 'वास्तुशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र का सम्बन्ध' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिषशास्त्र का परिचय तथा पंचांग परिचय के बारे में पढ़ा। इस इकाई में अब हम वास्तु और ज्योतिष के सम्बन्ध में अध्ययन करने जा रहे हैं।

वास्तुशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है, ज्योतिषशास्त्र किस प्रकार से वास्तुशास्त्र का पूरक है। इस विषय में जानने का प्रयत्न करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- जान पायेंगे कि वास्तुशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र का किस प्रकार परस्पर सम्बन्ध है।
- वास्तुशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र की समानता के विषय में परिचित हो पायेंगे।
- ज्योतिष और वास्तु एक दूसरे के परस्पर कैसे सहायक हैं इस सिद्धान्त के विषय में परिचय ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 वास्तु और ज्योतिष का सम्बन्ध (परिचय)

वास्तु शास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। दोनों को एक दूसरे का पूरक भी कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि ज्योतिष और वास्तु का आपस (परस्पर) में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का ही एक भाग है। ज्योतिषशास्त्र के माध्यम सं जन्मांग में विद्यमान ग्रह योगों के द्वारा व्यक्तिगत फलकथन किया जाता है, वहीं समष्टिगत फलकथन संहिता भाग के द्वारा किया जाता है। ठीक उसी प्रकार वास्तुशास्त्र में भी भूमि–भवनादि वासयोग्य स्थानों के फल व भवन निर्माण की समस्त प्रक्रिया, भवन में रखरखाव साज–सज्जा संरचना और व्यवस्था से जुड़ा शास्त्र है। वास्तुशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र दोनों का उद्देश्य मानव जीवन को सुखमय बनाना है। वास्तुशास्त्र के द्वारा वातावरण में उपस्थित ऊर्जा को संतुलित रूप में प्राप्त कर जीवन में

उन्नति और सफलता और अधिक से अधिक सकारात्क ऊर्जा शक्ति प्राप्त करना है। यह किस प्रकार संभव है, आइये जानें–

यह विश्वविदित है कि प्राणिमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है, उन सब में मानव बुद्धि प्रधान प्राणी है, जिसका जीवनक्रम वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार अनुशासित है। ज्योतिषशासत्र का अन्यतम अंग वास्तुविद्या है। इसका ज्ञान वृहत्संहिता, मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, रत्माला, गृहभूषण, वास्तुमाला, वास्तुप्रबन्ध आदि ग्रन्थों में निहित है।

''गृहणाति इति गृहम्'' जो दूरस्थ प्राणी को भी अपनी ओर आकृष्ट करें उसे गृह कहते हैं। इसमें भी तृण, मिट्टी, ईंट और पत्थर द्वारा निर्मित गृह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं। वास्तुशास्त्र की दो परम्परायें रही हैं। जिसमें उत्तरापथीय के प्रवर्तक विश्वकर्मा तथा दक्षिणपथीय के मय दानव थे।

इस विद्या का पश्चाद्वर्ती ज्योतिषियों ने पल्लवन किया अतः इनके कुछ निर्देश भिन्न–भिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं जिनकी मान्यता धर्मप्रमाण भारतवर्ष में चिरकाल से चली आ रही है। आज हम भारतीय पाश्चात्य भी विज्ञान के आलोक से इतने अधिक प्रभावित हो गये हैं कि हमको अपने शास्त्र तथा अपने पूर्वजों के उपदेश अच्छे नहीं लग रहे हैं। फलतः हम उनकी उपेक्षा करते जा रहे हैं। फिर भी कतिपय धर्मप्राण व्यक्ति आज भी हैं और रहेंगे, जिनकी आस्था अपने धर्मग्रन्थों, विज्ञान तथा पूर्वजों के उपदेशों के प्रति अडिग है, तदनुरूप ज्योतिष शास्त्र का अभिन्न अंग होने के कारण वास्तुशास्त्र में निहित सभी विचारणीय व प्रतिपादित विषय ज्योतिष की तरह पंचांग से शुरू होते हैं। वास्तुशास्त्र में प्रत्येक दिशा को एक ग्रह से जोड़ा गया है। प्रत्येक ग्रह के गुण, धर्म व स्वभाव का ज्ञान जरूरी हो जाता है। वास्तु प्राप्ति के लिए अनुष्ठान, भूमि पूजन, नींव, खनन, शिलान्यास द्वार स्थापना व गृह प्रवेशादि मुहूर्तों का शुभाऽशुभ ज्ञान के लिए ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान जरूरी हो जाता है।

ग्रामवासादि विचार में ज्योतिषशास्त्र

वास्तुशास्त्र के प्रारम्भिक गृहारम्भ में सर्वप्रथम द्वारशुद्धि का विचार जब हम करते हैं तो उसमें वृषचक्र के अनुसार नक्षत्रशुद्धि विचार देखा जाता है। नक्षत्र शुद्धि के लिए

विशेषतया पंचक संज्ञक नक्षत्रों को छोड़कर ग्रहण करने की बात आती है, तथा उसी क्रम में लग्नशुद्धि देखी जाती है। तात्पर्य यह है कि पग–पग पर वास्तुशास्त्र में ज्योतिष निहित है।

''द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पंचके स्थिरे लग्ने द्वयंगेवालयमारभेत्।।
त्यक्त्वा कुर्जाकयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुझ।
बुधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद रोहं शुभप्तये।।

ग्रामवास का विचार भी जब करते हैं, तो उसमें भी सर्वप्रथम नक्षत्र से ही आरम्भ होता है। ग्राम के नाम नक्षत्र से जन्म नक्षत्र तक नराकृति चक्र का विचार किया जाता है। नक्षत्रों की गणना जिस प्रकार मनुष्य के शरीर का महत्वपूर्ण अंग मस्तिष्क है, तदनुसार मस्तक से नक्षत्रों की गणना प्रारम्भ की जाती है, और प्रत्येक अंगों में नक्षत्रों व नक्षत्र चरणों का विविध फल कथन किया जाता है–

''मस्तके पंचलाभाय मुखे त्रीणि धनक्षयः।
कुक्षौ पंच धनं धान्यं षट्पादे स्त्रीदरिद्रता।।
पृष्ठे चैकं पादहानिर्नाभौ चत्वारि सम्पदः।
गुह्ये चैकं भयं पीड़ां हस्त चैकन्तु क्रन्दनम्।
वामे चैक करे भेदो ग्रामचक्रं नराकृतिः।।
गणयेज्जन्मनक्षत्रं ग्रामनक्षत्रतस्तदा।। (वृहद्वास्तुमाला – 10–12)

वास्तुशास्त्र में वर्ग और काकिणी विचार

वास्तुशास्त्र में भी ज्योतिषशास्त्र की भाँति वर्ग ज्ञान का फल कथन की प्रक्रिया है– अ, क, च, ट, त, प, य, श इन आठ वर्गों के क्रमशः गरूड़, विडाल, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग, मेष स्वामी होते हैं। और ये पूर्व आदि आठ दिशाओं के स्वामी भी हैं। उपर्युक्त वर्गों के स्वामी अपने से पांचवें के शत्रु होते हैं। यथा – गरूड़ सर्प का शत्रु होता है। इस प्रकार से ग्रामवासादि में वर्ग विचार किया जाता है, ठीक तदनुरूप ग्रह में लायक में भी विचार किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र का आपस

में अभिन्न सम्बन्ध है।

वर्गाष्टकस्य पतयो गरूड़ो विडालः।
सिंहस्तथैव शुनकरोग–मूषकैणः।।
मेष क्रमेण गदिताः खलु पूर्वतोऽपि।
यः पंचमः स रिपूरेव बुधैविवर्ज्यः।। (वृहद्वास्तुमाला – पृ0 5)

काकिणी विचार – काकिणी का विचार भी ज्योतिषशास्त्र में किया जाता है। मैत्री, क्रय, विक्रय ग्रामवासादि में यह भी समान रूप से ज्योतिष और वास्तु दोनों में प्रयुज्य है।

अपने–अपने वर्ग को दुगुना करके दूसरे की वर्ग संख्या को जोड़कर उसमें आठ का भाग देने पर जो शेष रहे उसकी काकिनी करते हैं। दोनों की काकणियों में जिसकी संख्या अधिक हो वह मृणी (दूसरे को लाभदायक) होता है।

''स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स मृणी भवेत्।।

मुहूर्तचिन्तामणि में रामदैवज्ञ ने राशि भेद से भी ग्रामवासादि का विचार किया है। वृष, मिथुन, सिंह, मकर राशि वालों को ग्राम के मध्य में तथा पूर्व आग्नेय, दिक्षण, नैमृप्य पश्चिम, वायब्य, उतर, ईशान से क्रमशः वृश्चिक मीन, कन्या, कर्म, धनु, तुला, मेष, कुम्भ राशि वालों को निवास नहीं करना चाहिये। अकारादि वर्ग उपर्युक्त दिशाओं में क्रमशः बलवान होते हैं। यथा अवर्ग युक्त नाम वाले व्यक्तियों को पश्चिम दिशा द्वार या निवास करना चाहिये।

''गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्व–ककुभोऽलिशषांगनाश्च
कर्को धनुस्तुलभमेफघटाश्च तद्व–
द्वर्गोः स्वपंचमपरा बलिनः स्युरैन्द्रयाः।।

वास्तु में अण्टोतरी दिग्दशा :– वास्तुशास्त्र में दिग्दशा में ग्रह और उनके वर्षों का निर्णय है। वह भी ज्योतिष शास्त्र से ही गृहीत है। दिग्दशा का फल आदि प्रायः फलित ग्रंथों में विहित है– दिग्दशा जानने के लिए गृहपति के नाम वर्ग, ग्रामवर्ग दिशा वर्ग के योग में 9

का भाग देने से जो शेष बचे तदनुसार ऊपर निर्दिष्ट क्रम के अनुसार दशा फल होता है। जैसे–

उद्विग्निचितः परिपूर्णवितो वहयाभिभूतो ज्वरपीडितांगः।
सौख्यान्वितो रोगयुतः सुखायो दुःखान्वितः सर्वसुखान्वितश्च

दशा	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	वृहस्पति	शनि	बुध	केतु	शुक्र
फल	उद्वेग	धनयुक्त	आ.... भय	ज्वर पीड़ा	सुख	रोग	सुख	दुःख	आनन्द

इसी क्रम में भूमिलक्षणों में ब्राह्मणादि वर्णों का फल बताया गया है, जो कि ज्योतिषशास्त्र के उपविषय हैं।

खातविधि में ज्योतिष व वास्तुशास्त्र

रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन आता है–

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहर्कमृगार्कतस्रिमे खाते मुखात पृष्ठविदिक शुभाभवेत्।।

इस प्रसंग में राशिवशात् दिशाओं में राहु के मुख–पुच्छादि का विचार किया जाता है। यह विषय मुहूर्त शास्त्र में प्रायः देखा जाता है, लेकिन इसका बहुत ही बड़ा महत्व है। वास्तुशास्त्र में खातादि विचार में यह भी कहीं न कहीं ज्योतिष और वास्तुशास्त्र का अन्तरतम सम्बन्ध को दर्शाता है।

इसी प्रकार मुहूर्त शास्त्र के बिना वास्तु की कल्पना असम्भव है। जिस प्रकार मुहूर्त, प्रश्न और शकुन ज्योतिष शास्त्र के उपअंग हैं तदवत् वास्तुशास्त्र भी ज्योतिष का ही एक अंग है। यह बात प्रायः ज्योतिष और वास्तु के ग्रन्थों में वर्णित है।

वास्तुशास्त्र में मेलापकादि का विचार

जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में विवाहमेलापक का विचार किया जाता है। उसी प्रकार

वास्तु में देश, ग्राम, गृह, ज्वर, व्यवहार, धूत आदि में काकिणी विचार वर्गशुद्धि आदि

पूनर्भूमेलापक में नाम राशि से ही विचार करने का विधान है–

"देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिषु दाने मनौ।

सेवाकाकिवर्गसंगरपुनर्भूमेलके नामभम्।। वृ0वा0माला

वास्तु में जिस ग्राम नगर में निवास हेतु भवन निर्माण करना हो या वास करना चाहें, वहाँ विवाहमेलापतु की भांति अष्टकूट मिलान का महत्व है, परन्तु यहाँ नाम राशि ही ग्रहण करनी चाहिये, शेष सभी मिलान विवाहमेलापतु की भांति है। इससे यह स्पष्ट दिखता है कि ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं।

वास्तुशास्त्र में पिण्डादि द्रव्यानयन प्रकार

जिस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र में लग्नादिद्वादश भावों के विचार से जीवन के सभी पहलुओं लाभ–हानि, जय–पराजय आदि पक्षों का विचार किया जाता है, उसी भाँति वास्तुशास्त्र में भी गृहपिण्डानयन से लाभालाभादि का विचार किया जाता है। गृहपिण्ड को 8 से गुणाकर गुणनफल में 12 का भाग देकर जो शेष होगा उसको निम्नोक्त क्रम से (द्रव्य) समझें, 1 शेष में वस्त्र, 2 में शत्रु, 3 में द्रव्य, 5 में धान्य, 6 में पृथ्वी, 7 में कुटुम्ब, 8 में विद्या, 9 में पशु, 10 में वाटिका, 11 में भाण्ड–भूषण और 12 में धन समझना चाहिए। उपरोक्त ये द्रव्य कहलाते हैं। वास्तु शास्त्र में

वास्तुशास्त्र में भृणानयनप्रकार

जिस प्रकार ज्योतिष में भृण–लाभ का विचार किया जाता है, उसी प्रकार वास्तुशास्त्र में भृणानयन का विचार किया जाता है। इसके लिए गृहपिण्ड को उसे गुणाकर 8 से भाग देने पर जो शेष्ज्ञ बचे उसको भृण समझें। इसका स्वामी पूर्व कथित रीति से समझना चाहिए।

नक्षत्रानयनप्रकार

गृहपिण्ड को 8 से गुणाकर 27 का भाग दें। वह अश्विनी नक्षत्र से गिनकर नक्षत्र समझना चाहिए। ज्योतिषशास्त्र में भी तारायें व आयुपिण्डानयन का विधान है। परन्तु यहाँ गृह पिण्ड की बात कही गई है। इसी प्रकार से ताराफल ज्योतिषशास्त्र की तरह यहाँ

(वास्तु में) भी गृहण किया गया है। विपत् तारा से विपरीत प्रत्यरि तारा से शत्रुता, निधनतारा से सर्वथा निधन होता है। अर्थात 3, 5, 7 ये तारायें अच्छी नहीं होती। उपरोक्त विवेचन से आप को ज्ञात हो पाया होगा कि ज्योतिष और वास्तुशास्त्र में किस प्रकार परस्पर सम्बन्ध है।

वास्तुशास्त्र में मुहूर्त

जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में मुहूर्त का मतलब पंचांग या पंचांग शुद्धि से है, उसी प्रकार वास्तुशास्त्र में भी मुहूर्त का विधान व प्रयोजन है। वास्तुशास्त्र मुहूर्त के बिना पंगुवद है, इसलिए वास्तुशास्त्र में मुहूर्त का वृहद महत्व होता है। आइये संक्षिप्त रूप से वास्तुशास्त्र में मुहूर्त के स्वरूप को जानते हैं–

(i) मासशुद्धि – मार्गशीर्ष, फालगुन, वैशाख, माघ, श्रावण, और कार्तिक, में गृह आदि का निर्माण करने से गृहपति को पुत्र तथा स्वास्थ्य लाभ होता है।

वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ, फालगुन में यदि कन्या, मिथुन, धन और मीन से अन्य राशि के सूर्य हो तो गृह निर्माण शुभ होता है। चैत्र, ज्येष्ठ, आषाण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, माघ महिनों में निर्माण नहीं करना चाहिए।

(i) सौरचान्द्रमास विचार – वास्तुशास्त्र में भी सौर–चान्द्रमास का प्रयोजन है। फालगुन मास में कुम्भ के सूर्य हों श्रावण में सिंह कर्क के तथा पौष में मकर के सूर्य हों तो पूर्व पश्चिम द्वार का गृह निर्माण शुभ होता है। वैशाख में मेष वृष के और मार्गशीर्ष में तुला वश्चिक के सूर्य हों तो दक्षिण उत्तर द्वार का गृह निर्माण शुभ होता है। ध्रुव, मृदु, शतभिषा, स्वाती, घनिष्ठा, हस्त, पुष्य, नक्षत्रों में गृहारम्भ शुभ होता है। किन्तु सूतिका निर्माण पुनर्वसु नक्षत्र में प्रारम्भ करें और श्रावण या अभिजित में उक्त गृह प्रवेश करने का निर्दिष्ट है।

इसी प्रकार गृहारम्भ का गृह प्रवेशादि में सौर चान्द्रमासादि का विचार किया जाता है, जिसको वास्तुशास्त्र में मासशुद्धि कहा जाता है, इसका सम्बन्ध भी ज्योतिषशास्त्र से ही है।

(ii) वास्तु में पक्षशुद्धि – शुक्ल पक्ष में गृहारम्भ करने से सर्वविध सुख, कृष्णपक्ष में चोरों

का भय होता है। महर्षि वसिष्ठ के मत में – यदि गुरू–शुक्र उदयी हों तो शुक्ल पक्ष के दिनों में गृहारम्भ करना चाहिये न कि रात्रि में।

(iii) वास्तु में तिथि – प्रतिपदा को गृह निर्माण का आरम्भ करने से दरिद्रता, चतुर्थी को धन हानि, अष्टमी को उच्चाटन, नवमी को शस्त्रभय, अमावस्या को राजभय और चतुर्दशी को स्त्रीहानि होती है। महर्षि भृगु के मत में चतुर्थी–अष्टमी, अमावस्या तिथियाँ, सूर्य, चन्द्र और मंगलवारों को त्याग देना चाहिए।

वास्तुशास्त्र में नक्षत्रशुद्धिविचार

वास्तुशास्त्र में ज्योतिषशास्त्र की तरह जब मुहूर्त का विचार किया जाता है तब पंचांग शुद्धि का विचार प्रथमतः किया जाता है। उसी क्रम में वास्तु शास्त्र में भी गृहारम्भ या गृहप्रवेशादि में मुहूर्त का पंचांग शुद्धि देखी जाती है। पूर्वोक्त क्रम में नक्षत्र शुद्धि का विचार इस प्रकार किया जाता है– चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्य, उत्तराषाठा, उत्तराफालगुनी, उत्तराभाद्रपदा, रोहिणी, घनिष्ठा और शतभिषा आदि नक्षत्रों में गृहारम्भ शुभ होता है। महर्षि पाराशर के मत में– चित्रा, शतभिक्ष, स्वाती, हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, रेवती, मूल, श्रवण, उत्तराफालगुनी, घनिष्ठा, उत्तराषाठा, उत्तराभाद्रपदा, अश्विनी, मृगशिरा और अनुराधा इन नक्षत्रों में वास्तुपूजन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है–

''सूर्यंगारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः।
इतरग्रह्वारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः।।

गर्गमते–

त्र्युत्तरेऽपि च रोधियां पुष्ये मैत्रे करद्वये।
घनिष्ठाद्वितये षोष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते।।

वास्तु में योग – वास्तुकर्म में योगशुद्धि का भी बड़ा महत्व है। योगों में विष्कुम्भ और व्यतीपात को छोड़कर शेष शुभ होते हैं। करणों में नाग, लव, तैतिल और गर उत्तम होते हैं। तिथियों में सम तिथियों (2, 4, 6, 8, 10, 12, 14, 30) शुभ नहीं हैं। मुहूर्तों – 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 13 ये मुहूर्त शुभ हैं। लग्नों में 2, 3, 6, 7, 9, 11 लग्न उत्तम माने गये हैं।

इस प्रकार वास्तुकर्म में मुहूर्त व पंचांग का महत्व है। इस से भी कहीं न कहीं ज्योतिषशास्त्र व वास्तुशास्त्र की अभिन्नता का बोध होता है।

वास्तुशास्त्र में लग्नादि द्वादश भाव और सूर्यादिनवग्रह–शुभग्रह से युक्त और दृष्ट द्विस्वभाव और स्थिरलग्न में वास्तुकर्म शुभ होता है। शुभ ग्रह बलवान होकर दशम स्थान में हो तो वास्तुकर्म शुभ होता है। अथवा शुभ ग्रह पंचम, नवम में हो और चन्द्रमा 1, 4, 7, 10 स्थान में हो तथा पापग्रह तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थान में हो तो गृह शुभ होता है। यदि अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो गृहेश की मृत्यु होती है।

मुहूर्तचिन्तामणि में इस प्रकार वर्णन आता है–

भौमार्करिक्तामाघूने चरो नांगे विपंचके।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभर्गेहारम्भस्त्रायारिगैः खलैः।।
बुधे द्रविणसंपतिगुरौ धर्मसमागमः।
यथा काम विमोदेन भृगौ कालं वज्रेदिह।।

दूसरा सूर्य हानि, चन्द्रमा शत्रुनाश, मंगल बधन, बुध द्रव्य–संपति, बृहस्पति धर्मसमागम, शुक्र विनोद, शनि विघ्नकारक होता है।

तीसरे स्थान में शुभ ग्रह शुभकारक होते हैं। तृतीय पापग्रह शुभ है, शीघ्र मनोरथ पूर्ति करते हैं। चौथा गुरू राजद्वार से सम्मान दिलाता है। चौथा चन्द्रमा सदा लाभदायक होता है। शुक्र भूमि लाभ, सूर्य मित्र वियोग, मंगल मित्र भेंट, चन्द्रमा बुद्धि नाश, शनि लाभदायक होता है।

इसी क्रम में गृहारम्भ व गृहप्रवेश कालिक ग्रहों की स्थिति वश फल होता है। इससे आप को बोध हो पा रहा होगा कि ज्योतिष और वास्तु का सम्बन्ध परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। ज्योतिषशास्त्र में जब वास्तु की बात आती है तो चतुर्थ स्थान गृह का होता है। उसकी शुभाशुभता से गृह वास्तु का बोध होता है कि किस प्रकार से हमारा गृह वास्तु होना चाहिए तथा वहीं वास्तु शास्त्र से भी हम अपने वास्तु से जीवन में प्रत्येक घटना का पूर्व बोध कर सकते हैं कि किस प्रकार के वास्तु का क्या फल होगा।

बोधात्मक प्रश्न

प्र01– वास्तुशास्त्र में वृष चक्र का विचार कहाँ किया जाता है?

क) द्वारशुद्धि ख) नक्षत्रशुद्धि ग) तिथिशुद्धि घ) पंचांग शुद्धि

प्र02– अष्टोत्तरी दिग्दशा का प्रयोजन कहाँ होता है?

क) ज्योतिषशास्त्र ख) वास्तुशास्त्र ग) मुहूर्तशास्त्र घ) गणित शास्त्र

प्र03– वास्तुशास्त्र में कितनी दिशायें होती हैं?

क) दस ख) चार ग) छः घ) सात

प्र04– पिण्डानयन किसका अंग है?

क) ज्योतिष ख) वास्तु ग) मुहूर्त घ) प्रश्न

3.4 सारांश

इस इकाई में हमने अध्ययन किया कि ज्योतिषशास्त्र व वास्तुशास्त्र का किस प्रकार परस्पर सम्बन्ध है। अतः इकाई के अध्ययन से आपने यह बोध किया कि ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन से वास्तुशास्त्र का अध्ययन सुगम होता है। यह विश्वविदित है कि प्राणिमात्र सुख तथा सुरक्षा की दृष्टि से अपने योग्य निवास की व्यवस्था करता है। उन सब में मानव बुद्धि प्रधान प्राणी है, जिसका जीवनक्रम वेदशास्त्रों के निर्देशानुसार अनुशासित है। ज्योतिषशास्त्र का अन्यतम अभिन्न अंग वास्तुशास्त्र, वास्तुविद्या है। इसका बोध वृहत्संहिता, मुहूर्तचिन्तामणि, मुहूर्तमार्तण्ड, मुहूर्तगणपति, रत्नमाला, गृहभूषण, वास्तुमाला, वास्तुप्रबन्ध आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से वर्णित है, अतः इससे स्पष्ट है कि ज्योतिष शास्त्र का ही अंग वास्तु शास्त्र है।

3.5 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

प्र01– क

प्र02– ख

प्र03– क

प्र04– ख

3.6 सहायक ग्रन्थ सूची

1. वृहदवास्तुमाला
2. वृहत्संहिता
3. मुहूर्तचिन्तामणि
4. मुहूर्तगणपति

3.7 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्तमार्तण्ड
2. नारद संहिता
3. मयमतम
4. वास्तुसार
5. प्रश्नमार्ग

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01– वास्तु और ज्योतिष के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये?

प्र02– पंचांग शुद्धि से क्या तात्पर्य है? वास्तुशास्त्र में पंचांग का प्रयोजन बतायें?

प्र03– मुहूर्त का वास्तु में क्या महत्व है?

प्र04– ग्रामवास में ज्योतिष शास्त्र को दर्शायें।

इकाई – 4 गृहनिर्माण प्रयोजन एवं महत्व

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई DVS-102 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक – 'गृह निर्माण प्रयोजन एवं महत्व' है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने ज्योतिष और वास्तु के सम्बन्ध में अध्ययन किया। अब आप वास्तु में गृह निर्माण प्रयोजन के विषय में अध्ययन करने जा रहे हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- जान पायेंगे कि वास्तुशास्त्र में ग्रहनिर्माण किस प्रकार से होता है।
- गृह निर्माण में किन–किन विषयों की अधिक भूमिका है।
- साथ ही गृह निर्माण की समग्र प्रविधि का बोध कर पायेंगे।
- साथ ही वास्तुशास्त्र में गृह निर्माण के महत्व को समझ पायेंगे।

4.3 गृहनिर्माण प्रयोजन

अनन्त शक्तियों से समन्वित प्रकृति में सृष्टि, विकास एवं प्रलय की प्रक्रिया सतत् प्रवाहमान रहती है। वास्तुशास्त्र में पंचमहाभूतों के साथ–साथ प्रकृति की तीन शक्तियों पर भी विचार किया जाता है। वे तीन शक्तियाँ हैं– गुरूत्व ऊर्जा, चुम्बकीय ऊर्जा एवं सौर ऊर्जा। पंचमहाभूत से निर्मित शरीर को सुखमय एवं स्वस्थ बनाने के लिए जिस भवन में अग्नि, आकाश, भूमि, जल एवं वायु स्वरूप पंचमहाभूतों का यदि सम्यक रूप से नियोजन किया जाए तो उस निर्मित भवन में निवास करने वाले प्राणी निश्चित रूप से समृद्ध रहते हैं। अतः भवन निर्माण के क्रम से सर्वसाधारण के लिए कतिपय नियमों का उल्लेख हम इस इकाई के माध्यम से जान पायेंगे।

गृह देवालयोद्यान लिङ्ग तोयाशयादिषु।
प्रारम्भे–पूर्णतया च श्रेयस्ते वास्तुपूजनम्।
प्रासादेष्वत्रते नार्चागृहे क्रीडन्ति राक्षसाः।।

गृह, देवालय, उद्यान, शिवलिङ्ग, जलाशय आदि के प्रारम्भ काल और पूर्णकाल में वास्तुपूजन किया जाना शुभ माना गया है। जहाँ पर वास्तु पूजन नहीं किया जाता है। वहाँ पर राक्षस क्रीड़ा करने लगते हैं। दुर्ग, पुर, राजगृह के निर्माण काल में चौंसठ पक्षीय वास्तु अर्चना करनी चाहिए। राजाओं के महल या हवेली होने पर इक्यासी पदीय और देवालय हो तो शतपदीय वास्तुपूजन किया जाना चाहिये। भूमि शुद्धिकरण के बाद वहाँ मणि, स्वर्ण, रजत, विद्रुम अथवा मूंगा और फलादि समर्पित कर उसकी पूजा करनी चाहिए।

4.3.1 गृह निर्माण में भूमि चयन

मनुष्य को घर बनाने से पूर्व भूमि का चयन इस प्रकार से करना चाहिये।

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा।
स्निग्धा समानसुखदा च महीं नरानाम्।।
अत्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां।
छत्रे श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।

जिस भूमि पर शुभ मांगलिक जयन्ती, जया, आदि शुभ औषधियाँ याज्ञिक, सरज, शाल, गूलर, वट, खैर, मवलेसरी आदि वृक्ष हो, मधुर, स्वादु, सुष्ठु, गंध, स्नेह (देखने मात्र से प्रसन्नता) सम (बराबर निचोच्च विषमता रहित, बिल–प्रस्फुटितादि दोष शून्य वह भूमि मनुष्य के लिए मांगलिक है। इस प्रकार की भूमि पर कुछ समय बैठने मात्र से मार्गजनित श्रम (थकावट) दूर होकर अभूतपूर्व आनन्द–सुखानुभूति होती है। ऐसी भूमि में गृह निर्माण कर निवास करने से शाश्वत–सुख–शान्ति–आनन्द व लक्ष्मी का निवास हमेशा बना रहेगा।

4.3.2 भूमि में प्लव (ढाल) विचार –

गृह निर्माण में जब हम भूमि की बात करते हैं तो इसमें भूमि की प्लव (ढाल) का विचार अवश्य करना चाहिये।

सर्वप्रथम दैवज्ञ को चाहिये कि वह दिक् शोधन कर ले तत्पश्चात् ढाल का विचार करें।

1. पूर्व की ओर ढाल भूमि वृद्धि करने वाली होती है। अर्थात् ऐसी भूमि से हमेशा लाभ मिलता है।
2. गृह निर्माण में उत्तर की ओर ढाल वाली भूमि धननाश करने वाली होती है।

3. पश्चिम की ओर ढालवाली भूमि धननाश करने वाली होती है अर्थात् जिस भूमि का ढाल पश्चिम दिशा की ओर होती है वह हानिकारक होती है।
4. दक्षिण की ओर ढाल वाली भूमि सर्वदा कष्ट देने वाली होती है। ऐसी भूमि में गृह निर्माण नहीं करना चाहिये।

शास्त्र में चत्वार वर्ण के माध्यम से भी भूमि का प्रशस्त कथन है। जैसे– ब्राह्मण चारों ओर की ढाल भूमि पर घर बना सकता है। अन्य जातियों के लिए निषेध है। पूर्व, क्षत्रिय, दक्षिण वैश्य, एवं पश्चिम दिशा में ढाल हो तो शुद्रो के लिए उत्तम कहा गया है। पूर्व दिशा में ढाल होने से श्री (लक्ष्मी धन) वृद्धि, आग्नेय कोण में दाह दक्षिण में मृत्यु, नैभृत्य में धन हानि, पश्चिम में पुत्रलक्षय, वायष्य में प्रवास उत्तर में धन लाभ ईशान में विद्या लाभ होता है। यदि पूर्व दिशा में भूमि के मध्य तक ढाल हो तो वह भूमि शुभप्रद नहीं होती।

स्पष्ट–चक्र

दिशा प्लव	पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायष्य	उत्तर	ईशान
फल	श्री	दाह	मरण	धनहानि	पुत्रक्षय	प्रवास	धन	लाभ
फल	वृहिदा	मृत्युशोक	गृहक्षय	हिसाब, खर्चा, चोरी	कीर्तिनाश	उद्वेग	धनदा लाभ	श्रीसुख

गृहारम्भ में वृषवास्तु चक्र –

गेहाद्यारम्भेऽर्क भाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहो वेदभैरग्रपादे।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीर्युगैदेक्षकुक्षौ
लाभौ रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नै एवं वामकुक्षौ मुखस्थै।
रामैः पीड़ा स्मृतं वार्कधिष्ण्यादश्वैरूद्रैर्दिव भरूक्तं हक्सत्सत्।।

गृहारम्भ समय में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र से आरम्भ करके नक्षत्र वत्स के मस्तक होते हैं। उसमें अगिन भय, उसके आगे के 4 नक्षत्र अगले पैर के होते हैं। उसमें शून्य, उसके आगे के 4 पिछले पैर होते हैं। उसमें स्थिरता, उसके आगे के 3 नक्षत्र पृष्ठ के

होते हैं। उसमें सम्पति, उसके आगे 4 नक्षत्र दाहिने भाग पेट में रहते हैं। उसमें लाभ, उसके आगे के 3 पुच्छ के नक्षत्रों में गृहपति का नाश, उसके आगे 4 बाँये भाग के पेट में होता है। उसमें निर्धनता और उसके आगे के 3 नक्षत्र मुख के होते हैं। उसमें सर्वदा पीड़ा होती है। अथवा इस प्रकार समझना कि सूर्य नक्षत्र से 7 नक्षत्रों में गृहारम्भ करने में शुभ, उसके आगे 11 नक्षत्रों में शुभ और उसके आगे के 10 नक्षत्रों में गृहारम्भ करने से अशुभ फल होता है।

सूर्य नक्षत्र से गृहारम्भ चक्र

7	11	10	वर्तमान नक्षत्र
अशुभ	शुभ	अशुभ	फल

उपरोक्त वर्णित विधि से आप गृहारम्भ में सूर्य नक्षत्र व वृषवास्तु का बोध हो पाया होगा।

गृहारम्भ में द्वार निर्णय – वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत गृहारम्भ का अपना महत्वपूर्ण स्थान है और उनमें भी द्वार निर्णय का महत्व भी अपने आप में उत्कृष्ट स्थान रखता है। हमारे गृहवास्तु में द्वार एक बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। द्वार में दोष होगा तो गृहवास्तु प्रभावित होगा इसलिए आइये जानते हैं कि द्वार विन्यास व निर्णय किस प्रकार किया जाता है।

कुम्भेऽर्के फालगुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः।
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोऽजगेऽर्के च राधे।।
मार्गे जूकालिगे सद ध्रुवमृदुवरूणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः।
सूतीगेहं त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्वत्र शस्तः प्रवेशः।।

द्वार निर्णय में यदि कुम्भ के सूर्य रहने पर फालगुन मास में पूर्व और पश्चिम मुख का तथा सिंह या कर्क के सूर्य रहने पर श्रावण मास में भी पूर्व–पश्चिम का मुख का घर बनाना चाहिए तथा पौष मास में मकर के सूर्य में दक्षिण या उत्तर मुख का तथा अगहन में तुला वृश्चिक के सूर्य में भी दक्षिण–उत्तर मुख का घर बनावें। इसी तरह ध्रुवसंज्ञक, भृदुसंज्ञक, शतभिषा, स्वाती, घनिष्ठा, हस्त और पुष्य नक्षत्रों में भी गृहारम्भ करना चाहिए। तथा पुनर्वसु में सूतिकागृह बनाना चाहिए और श्रवण तथा रोहिणी नक्षत्र में प्रवेश प्रशस्त

कहा गया है। इसी क्रम में दूसरी रीति किसी आचार्य का मत है कि मेष का सूर्य हो तो चैत्र में वृष का सूर्य हो तो ज्येष्ठ में कर्क का सूर्य हो तो अश्विन में, वृश्चिक का सूर्य हो तो कार्तिक में, मकर का सूर्य हो तो पौष में कुम्भ का रवि हो तो माघ में भी गृहारम्भ शुभ होता है। किन्तु कन्या का रवि हो तो कार्तिक में तथा धनु का रवि हो तो माघ में भी गृहारम्भ अशुभ होता है। यहाँ मास कृष्ण पक्ष प्रतिपदा से समझना चाहिए।

उपरोक्त (पूर्वोक्त) क्रम में आप बोध कर पाये होंगे कि किस तरह द्वार स्थापन होता है, व पूर्वादि दिशाओं में द्वार स्थापन के शुभाऽशुभ फल किस प्रकार प्राप्त होता है। अब इसी क्रम में हम द्वार स्थापन मुहूर्त के विषय में जानेंगे।

द्वार स्थापन मुहूर्त

अश्वनी तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, श्रवण, मृगशिरा, रोहिणी, स्वाती और रेवती नक्षत्र में द्वारशाखा अथवा चौखट लगानी चाहिये।

अनुराधा, पुष्य, ज्येष्ठा, रेवती, हस्त अश्विनी, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु नक्ष, गुरू, चन्द्र, शुक्र, सूर्य, बुधवार और नन्दा (1, 6, 11) तिथि, पूर्णा (5, 10, 15) तिथि जया (3, 8, 13) तिथि में चौखट लगाना उत्तम होता है।

- स्थिर राशि का लग्न हो ध्रुव संज्ञक नक्षत्र (3 उत्तरा, रोहिणी) में द्वार स्थापना शुभ होती है।
- चर स्थिर संज्ञक नक्षत्र, बुध, शुक्रवार शुभ तिथि एवं द्विस्वभाव लग्न में चौखट लगाना शुभ होता है।
- जब हमारा घर बन के तैयार हो जाये तो उसे सजाने का कार्य भी करते हैं ताकि सुन्दर सजावट से हमारा घर सुन्दर दिखे जो भी अतिथिगण हमारे घर में प्रवेश करें तो उनको भी लगे कि विधिवत् रूप से सजावट कैसे होती है। हर दिशा की अपनी–अपनी सजावटें होती हैं। जैसे कि–

द्वार स्थापन के फल

सर्वप्रथम घर की लम्बाई चौड़ाई को बराबर (8) भागों में बांट दें। अब उन्हीं 8 भागों में से

हमें शुभ भाग में द्वार की स्थापना करनी चाहिए।

सर्वप्रथम घर की लम्बाई चौड़ाई को बराबर (8) भागों में बांट दें अब उन्हीं 8 भागों में हमें शुभ भाग में द्वार की स्थापना करनी चाहिए।

आइये जानते हैं कि पूर्वादि दिशाओं में द्वार होने के शुभाऽशुभ फल पूर्व दिशा के प्रथम भाग में दरवाजा बनाने से दुःख, दूसरे में शोक, तीसरे में धन लाभ, चौथे में राजा से पूजित, पाँचवें में अधिक धन, छठे में कन्या जन्म, सातवें में पुत्रता, आठवें भाग में द्वार बनाने से हानि होती है।

दक्षिण के पहले भाग में दरवाजा बनाने से मरण, दूसरे में बन्धन, तीसरे में भय, चौथे में पुत्र प्राप्ति, पाँचवें में धनागम छठे में यश प्राप्ति, सातवें में चोर भय और आठवें में द्वार निर्माण करने से रोग भय होता है।

पश्चिम दिशा में प्रथम भाग में दरवाजा बनाने पर निर्धनता, दूसरे में स्त्री दुःख, तीसरे में लक्ष्मी प्राप्ति, चौथे में सम्पति–लाभ, पाँचवें भाग में सौभाग्य, छठे में दुःख की उपलब्धि, सातवें में शोक और आठवें भाग में द्वार बनाने से बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण का पहला भाग (दूसरा भाग) और आठवाँ भाग त्यज्म बताया गया है। पूर्व, पश्चिम का तीसरा भाग शुभ, उत्तर दक्षिण का तीसरा भाग अशुभ बताया गया है। चारों दिशाओं का चौथा भाग, पाँचवा भाग धन लाभ, उत्तर के छठे भाग में हानि। पूर्व दिशा को छोड़कर शेष तीन दिशाओं में सातवें भाग पर द्वार स्थापना नहीं करनी चाहिए।

गृह वास्तु में घर में रामायण, महाभारत इत्यादि युद्धों के चित्र, तलवार का युद्ध चित्र, इन्द्र जातिक चित्र और पत्थर व काठ (लकड़ी) की बनी हुई राक्षसों की भयंकर मूर्ति रोते हुए मनुष्य का चित्र इत्यादि लगाना शुभ नहीं होता है।

वराह (शूकर), सिंह, सियार, बिच्छू, व्याघ्र, साँप–गिद्ध, उल्लू, कबूतर, कौवा, सेन (बाज), गोह, बगुल का तथा विचित्र पक्षी का चित्र अपने गृह में रखना भी शुभ नहीं होता है।

गृहारम्भ में मासों का फल

चैत्रादि मासों में गृहारम्भ के विविध शुभाऽशुभ फल शास्त्र में निर्दिष्ट है। जैसे चैत्र में

गृहारम्भ करने पर व्याधि, वैशाख में धन–धान्य, ज्येष्ठ में मृत्युभय तथा आषाढ़ में अनेक प्रकार के रत्न, पशु आदि का लाभ, श्रावण में मित्रलाभ तथा भाद्रपद में हानि, आश्विन मास में पत्नी हानि, कार्तिक में धनधान्यादि प्राप्ति, मार्गशीर्ष में वित्तला, पौष में चोरभय, माघ में में लाभ, फालगुन में कदाचित्, अग्निभय आदि हो सकता है। इस प्रकार से चैत्रादि मासों में गृहारम्भ करने पर उपरोक्त फल प्राप्त होते हैं–

व्याधिं चैत्रे समाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः।
वैशाखे धनधान्यानि ज्येष्ठे मृत्युभयं तथा।।
आषाढे भ्रव्यरत्नानि पशुं वर्जमवाप्नुयात्।
श्रावणे मित्रलाभं च हानिं भाद्रपदे तथा
भार्याहानिमिषे मासि कार्तिके धनधान्यकम्
मार्गशीर्षे वित्तलाभं पौषे तस्करतो भयम्
माघे तु बहुशो लाभं तथैवाग्निभयं दिशेत्।
कांचनं फालगुने विन्धदिति मासफलं गृहे।।

गृहारम्भ में पक्ष का क्या फल होता है, आइये जानते हैं–

"शुक्लपक्षे भवेत् सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्।
गीर्वाण पूर्वगीर्वाण मन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः।
शुक्ले पक्षे दिवा कार्यं निशायां न कदाचन।।"

(मुहूर्तचिन्तामणि) (वास्तु प्रकरणम्)

शुक्लपक्ष में गृहारम्भ से सुख होता है और कृष्णपक्ष में चोर का भय होता है। बृहस्पति और शुक्र उदित होने चाहिए। गृहारम्भ रात्रि में कदापि नहीं करना चाहिए।

द्वार निषेध

पूर्णिमा से कृष्णपक्ष की अष्टमी पर्यन्त पूर्वमुख का, कृष्ण पक्ष नवमी से 14 पर्यन्त उत्तर मुख का, अमावस्या से शुक्ल पक्ष अष्टमी तक पश्चिम मुख और नवमी से शुक्ल 1 चतुर्दशी तक दक्षिण मुख का घर बनाना शुभ नहीं होता है।

''पूर्णेन्दुः प्राग्वदनं नवम्यादिषूतरास्ये त्वथ पश्चिमास्यम्।

दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति। (मुहूर्तचिन्तामणि)

गृहनिर्माण में तृण काष्ठ विशेष

उपरोक्त जो मास तिथि आदि निन्दित कह गये हैं उनमें ईंट, पत्थर आदि के घर नहीं बनावें। काष्ठा और तृण से घर बनाने में निन्ध–मासों का दोष नहीं लगता है–

''पाषाणोष्टयादिगेहानि निघमासे न कारयेत।

तृणदारूगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते।।

निन्घ मासों में पत्थर आदि घर की जगह तृण काष्ठ के घर बनाने में मासों का दोष नहीं लगता।

गृहारम्भ में पंचांग शुद्धि

मङ्गल और रविवार रिक्ता (4/9/14) अमावस्या, प्रतिपदा इन सबों से भिन्न वार और तिथियों में, चर लग्न को छोड़कर अन्य लग्नों में तथा पंचक (घनिष्ठादि 5 नक्षत्र) को छोड़कर अन्य नक्षत्रों में, तथा लग्न से 12, 8 भिन्न स्थान में शुभ ग्रह और 3, 6, 11 भावों में पाप ग्रह हों तो गृहारम्भ शुभ होता है।

भौमार्करिक्तामाघूने चरोनेऽङ्गे पिपंचके।

व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः।। (मुहूर्त चिन्तामणि)

उपरोक्त पंचांग शुद्धि देखकर गृहारम्भ करने से सर्वत्र शुभ फलों की प्राप्ति होती है। ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है। अतः पंचांग शुद्धि मास शुद्धि देखकर ही गृहनिर्माण कार्य करने का निर्देश देना चाहिये।

गृहारम्भ देवालयादि में राहुमूख का विचार

देवालय (मन्दिर) गृह और जलाशय के बनवाने में यथाक्रम मीन से 3, 3 राशियों के सूर्य में वायु, नैत्रृत्य, आग्नेय और ईशान कोण में राहु का मुख रहता है तथा गृहारम्भ में

सिंह से 3, 3 राशियों के सूर्य में, उसी प्रकार वायुकोण से विपरीत क्रम से चारों कोणों में राहु का मुख समझना चाहिये। मुख दिशा से पृष्ठ दिशा में खात बनाना शुभ होता है।

राहुमुख चक्र

राहु	ईशान	वायव्य	नैत्रृत्य	आग्नेय	मुख
देवालयारम्भ	मी0मे0वृ0	मि0क0सि0	क0तु0वृ0	घ0म0कु	सूर्यस्थिति
गृहारम्भ	सिं क तु	वृ0घ0म0	कु0मी0मे0	वृ0मि0क0	सूर्यस्थिति
जलाशयारम्भ	म0कु0मी0	मे0वृ0मि0	क0सि0क0	तु0वृ0घ0	सूर्यस्थिति
राहु	आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैत्रृव्य	पृष्ठ

गृह निर्माण में कूप विचार

गृह निर्माण में यदि वास्तु भूमि के मध्य भाग में कुँआ खोदवाने से धन का नाश होता है। ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्यवृद्धि, अग्निकोण में पुत्रहानि, दक्षिण में स्त्री का नाश, नैत्रृत्य कोण में स्वमरण, पश्चिम में सम्पतिवृद्धि, वायुकोण में शत्रु द्वारा पीड़ा और उत्तर भाग ें सुख–प्राप्ति होती है।

गृहकूपचक्र

ईशान (पुष्टि)	पूर्व, ऐश्वर्यवृद्धि	अग्निकोण पुत्रनाश
उत्तर (सौख्य)	धननाश	दक्षिण स्त्रीनाश
वाचव्य शत्रुकृतपीड़ा	पश्चिम सम्पति	नैत्रृत्य स्वामिमरण

उपरोक्त विधि से जलाशय व कुँआ बनाना चाहिये मुहूर्तचिन्तामणि में इस प्रकार कहा गया है–

''कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सासैख्यम्।।''

दिशाओं में गृह विभाग

गृह निर्माण में भवन की दिशा किस दिशा में क्या होना चाहिए इसको गृह वास्तु

कहते हैं। शास्त्रकारों ने इस विषय पर इस प्रकार कहा है–

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजश्च धान्य

भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः।

तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्याभ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम्।। मु0चि0वास्तु प्रकरणम्

वास्तु भूमि अर्थात् (भवननिर्माण भूमि) के पूर्व भाग में स्नान का अग्निकोण में रसोई का, दक्षिण में शयन का, नैऋत्य कोण में अस्त्र–शस्त्र का, पश्चिम में भोजन का, वायव्य कोण में अन्न आदि का तथा उत्तर में भण्डार घर बनवाना चाहिये तथा उक दो–दो स्थान के बीच–बीच में क्रम से दही मथने का, घृत रखने का, पैखाने का, विद्याभ्यास का, रोदन का, सुरत का, औषध रखने का और 8वां शेष सब वस्तुओं का स्थान (घर या कमरा) बनाना चाहिये।

स्पष्टार्थ चक्र

ईशान पूर्व आग्नेय

<table>
<tr><td>देवतागृह</td><td>सर्वसंग्रह</td><td colspan="2">मन्थनगृह</td><td>रसोईघर</td></tr>
<tr><td>औषधि गृह</td><td colspan="3" rowspan="4">आँगन</td><td>घृत गृह</td></tr>
<tr><td>भण्डार</td><td>शयनगृह</td></tr>
<tr><td>स्त्रीप्रसंग गृह</td><td rowspan="2">पायखाना (शौचालय</td></tr>
<tr><td>धान्य संग्रहालय</td></tr>
<tr><td></td><td>रोदन गृह</td><td>भोजन संग्रहालय</td><td>विद्याभ्याल गृह</td><td>शस्त्रागार</td></tr>
</table>

उत्तर (बाएँ) — दक्षिण (दाएँ)

पश्चिम

गृह की आयु के योग

जिस प्रकार होरा शास्त्र में जातक की आयु का निर्धारण आयु साधन पद्धति से किया जाता है। वैसे ही वास्तु शास्त्र में गृह आयु का भी बड़ा महत्व है। गृह आयु योगों से

हम भवन, देवालय व गृह की आयु का पता लगा सकते हैं। ये सब विषय गृह निर्माण में घातव्य हैं। आइये जानते हैं कि गृह आय के कौन–कौन से योग होते हैं–

''जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु।
स्थितः शतं स्याच्छरदां शितार्करिज्ये तनुत्र्यङ्गसुते शते द्वे।।''

- गृहारम्भ समय में यदि वृहस्पति, सूर्य, बुध, शुक्र और शनि ये क्रम से लग्न 6, 7, 4, 3 भावों में हों तो उस घर की आयु 100 वर्ष होती है तथा लग्न में शुक्र, तृतीय में सूर्य, षष्ठ भाव में मंगल और पंचम में बृहस्पति हो तो 200 दो सौ वर्ष उस घर की आयु जाननी चाहिये।
- गृहारम्भ के समय यदि लग्न 10, 11 इन भावों में क्रम से शुक्र, बुध और सूर्य हों तथा गुरू केन्द्र में हो तो भी सौ वर्ष की आयु होती है। चतुर्थ में गुरू, दशम भाव में चन्द्रमा और एकादश में शनि या मङ्गल हों तो 80 वर्ष गृह की आयु होती है।

गृहारम्भ में नक्षत्र वार की प्रधानता

गृह निर्माण व गृहारम्भ में वार और नक्षत्रों का भी विशेष महत्व होता है। जिस प्रकार पूर्व में हमने पक्ष, मास, तिथि का अध्ययन किया उसी प्रकार गृह निर्माण में नक्षत्र वार का क्या महत्व है? आइये जानते हैं–

यदि गृहारम्भ समय में बृहस्पति से युत पुष्य, ध्रुवसंज्ञक, गृगीशरा, श्रवण, आश्लेषा या पूर्वाषाढा में से कोई नक्षत्र हो तथा बृहस्पतिवार भी हो तो वह घर पुत्र और राज्य की वृद्धि करने वाला होता है तथा शुक्र युत विशाखा, अश्विनी, चित्रा, घनिष्ठा, शतभिषा या आर्द्रा नक्षत्र हो तो शुक्रवार भी हो तो वह घर धन–धान्य की वृद्धि करने वाला होता है।

दूसरा योग यदि मंगल से युक्त हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढा या मूल नक्षत्र हो और मंगलवार हो तो वह घर अग्नि और सन्तान को पीड़ा देने वाला होता है, तथा बुध से युत रोहिणी, अश्विनी, उत्तराफालगुनी चित्रा, हस्त नक्षत्र हो और बुधवार हो तो वह घर सुख और सन्तान की वृद्धि करने वाला होता है।

''सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः कौजेऽह्वि वेश्माग्निसुतार्त्रिदं स्यात्।
सज्ञैः कदास्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात्।।

अशुभ योग

अजैकपादहिर्बुदघ्न्यशक्रमित्रामिलान्तकैः।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम्।।

यदि शनि से युत पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपदः, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती या भरणी नक्षत्र हो और शनिवार भी हो तो उस समय में बनाया हुआ घर राक्षस और भूत–प्रेत से युक्त होता है।

बोधात्मक प्रश्न

प्र01– वास्तुशास्त्र में गृह नाम संख्या कितनी है?
क) द्वादश 12 ख) दशम् 10 ग) एकादश 11 घ) षोऽश 16

प्र02– वृषवास्तु चक्र .... एक अभिन्न अंग है–
क) ज्योतिष ख) मुहूर्त ग) प्रश्न घ) वास्तु

प्र03– सूर्य नक्षत्र में विचार किया जाता है वास्तुशास्त्र में ?
क) गृह प्रवेश ख) आयसाधन ग) मुहूर्त विचार घ) द्वार निर्णय

प्र04– राहु मुख का विचार किया जाता है–
क) ज्योतिष ख) विवाह ग) यात्रा घ) गृहारम्भ देवालयादि में

बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

प्र01– घ

प्र02– ङ

प्र03– घ

प्र04– घ

4.5 सारांश

भारतीय स्थापत्य कला में वास्तुविज्ञान की महता स्वतः सिद्ध है। भारतीय ऋषियों ने वेद ज्ञान के आधार पर मानव मात्र के कल्याण हेतु शोध एवं चिन्तन द्वारा चारों उपवेद–ऋग्वेद से आयुर्वेद, यजुर्वेद से धनुर्वेद अथर्ववेद तथा सामवेद से गन्धर्ववेद की रचना की। वैदिक वाङ्मय की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जो भी मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है, उसे धर्म का अंग बनाकर जीवन शैली में ढाल दिया है। चारों उपवेदों के बाद जो सबसे अधिक उपयोगी ग्रन्थ ऋषियों ने रचा और जन–जन का जीवन शैली का अंग बना दिया वह वास्तु शास्त्र है। इस इकाई के अन्तर्गत हमने गृहारम्भ से जुड़ी सभी प्रमुख विषयों का अध्ययन किया। हमने जाना कि गृहारम्भ कब और कैसे करना चाहिये। गृहारम्भ में पंचांग शुद्धि से लेकर द्वार निर्णय आदि सभी विषयों का गहनता पूर्वक अध्ययन किया। साथ ही गृहारम्भ के महत्व को भी समझा।

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– वृहत्संहिता (अच्युतानन्द झा) चौखम्बास विद्या भवन

2– नारद संहिता (पं0 रामजन्म मिश्र) चौखम्बा संस्कृत भवन वाराणसी

3– मुहूर्तचिन्तामणि

4– वास्तुशास्त्र सार

5– मयमतम्

4.7 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01– वास्तुशास्त्र में गृहारम्भ का क्या महत्व है?

प्र02– द्वार निर्णय से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।

प्र03– गृहारम्भ किन–किन मासों में करने से शुभता आती है?

प्र04– सूर्यभात चक्र व वृषवास्तु चक्र का प्रयोजन क्या है?

इकाई – 5 ग्रामवास का शुभाशुभत्व

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विषय परिचय
5.3.1 ग्रामवास में लाभालाभ विचार
5.3.2 ग्रामवास नक्षत्र चक्र एवं नराकार चक्र द्वारा ग्रामवास फल विचार
5.4 सारांश
5.5 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.7 सहायक पाठ्यसामग्री
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना –

प्रस्तुत इकाई DVS (डी0वी0एस0) के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई से सम्बन्धित है, जिसका शीर्षक ग्रामवास का शुभाशुभत्व है। इससे पूर्व की इकाई में आपने गृह निर्माण प्रयोजन एवं महत्व का अध्ययन किया। अब आप ग्रामवास का शुभाशुभत्व के विषय में अध्ययन करने जा रहे हैं।

5.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पायेंगे कि

- वास्तुशास्त्र में ग्रामवास का विचार किस प्रकार किया जाता है
- साथ ही ग्रामवास के शुभ और अशुभ फले का विचार किस प्रकार किया जाता है। इसके विषय में भी जान पायेंगे।
- वास्तुशास्त्र में ग्रामवास के महत्व और उपयोगिता को भी समझ पायेंगे।

5.3 विषय–परिचय –

सर्वप्रथम गृह निर्माण करने से पूर्व, जिस ग्राम या नगर में घर का निर्माण करना हो वह ग्राम या नगर व्यक्ति के लिए वास योग्य शुभाऽशुभ कैसा है, इसका विचार करना अनिवार्य है। गृहस्थ के समस्त कार्य अपने घर में ही पूर्ण शुभफलदायी होते हैं। दूसरे के घर में किये गये सभी कार्य श्रौत एवं स्मार्त कर्म पूर्ण रूपेण सफल नहीं होते। क्योंकि इन शुभ कर्मों के शुभफल का भागी भूमिपति (मकान मालिक) हो जाता है। इस सन्दर्भ में भविष्य पुराण में भी कहा गया है–

परगेहकृताः सर्वाः श्रौतस्मार्त क्रियाः शुभाः।

निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपनी–अपनी सामर्थ्यानुसार अपने आवास के लिए गृह निर्माण अवश्य करना चाहिए। लेकिन अपनी इच्छानुसार ही किसी ग्राम या नगर को अपने

आवास हेतु चुन लेना किसी भी व्यक्ति के लिए प्रत्येक स्थान, ग्राम की प्रत्येक दिशा या नगर तथा नगर की प्रत्येक दिशा अथवा भाग आवास की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता। इन सब बातों का विचार वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तानुसार कर लेना चाहिए। इसी बात को स्पष्ट करते हुए ''वास्तु रत्नाकर'' ग्रन्थ में कहा है–

पहले ग्राम के अनुकूलता फिर दिशा की अनुकूलता और इसके बाद भूमि की अनुकूलता का तत्पश्चात् गृह के पिण्ड आय वार, नक्षतादि का शास्त्रानुसार विचार करके गृह–निर्माण करना चाहिए।[7]

आवास की दृष्टि से ग्राम या नगर की अनुकूलता या प्रतिकूलता का विचार राशि तथा वर्ग काकिणी के आधार पर किया जाता है। अतः वास्तुशास्त्रीय रीति से राशि तथा वर्ग के विचार की विधि को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे आप ग्राम वास के शुभाशुभ का बोध कर पायेंगे।

5.3.1 ग्रामवास में लाभालाभ विचार

ग्रामवास का तात्पर्य यह है कि किसी गाँव (ग्राम) में बसने की इच्छा करने वालों के नाम की राशि से जिस गाँव की राशि 2, 9, 5, 11, 10 संख्या में हो तो वह गाँव शुभ बसने योग्य समझना चाहिये। अर्थात् अन्य संख्या में हो तो अशुभ समझना चाहिये। इसी क्रम में काकिणी (धन) विचार भी किया जाता है– नाम और गाँव की काकिणी विचार करना हो तो नाम के वर्ग (अ क + च ट) की संख्या को दूना करके उसमें गाँव की वर्ग–संख्या जोड़ें। फिर योगफल में 8 के भाग देने से जो शेष बचे वह नाम की (अपनी) काकिणी होती है। एक गाँव की वर्ग संख्या को दूना करके उसमें नाम की वर्ग संख्या जोड़कर योगफल में 8 के भाग देने से जो शेष बचे वह गाँव की काकिणी होती है। इन दोनों में जिसकी काकिणी अधिक हो वह अर्थद (धनदाता उत्तर्मण) होता है।

इसी प्रकार ग्रामवासादि क्रम में द्वार विचार का भी शुभाऽशुभ जानना चाहिये। द्वाार विचार में ब्राह्मण (द्विज) कर्क, वृश्चिक, मीना राशि वालों के लिए पूर्व द्वार, वैश्य (वृष, कन्या, मकर) राशिवालों के लिए दक्षिण द्वार, शूद्र (मिथुन, तुला, कुम्भ) राशि वालों के लिए

[7] वास्तुरत्नाकार – भूपरिग्रहप्रकरण श्लो0 सं0 1

पश्चिम द्वार, क्षत्रिय (मेष, सिंह, धनु) राशिवालों के लिए उत्तर द्वार, इस तरह प्रत्येक दिशा में घर का द्वार शुभप्रद होता है।

उदाहरण – जैसे शिवप्रसाद को काशी में वास कैसा होगा? यह विचारना है तो शिवप्रसाद की राशि कुम्भ के गाँव (काशी) की राशि मिथुन तक गिनने से 5 हुआ, इसलिये शिवप्रसाद को काशी में बसना शुभप्रद सिद्ध हुआ।

अब इसी क्रम में काकिणी (धन) को विचारने के लिए नाम (शिवप्रसाद) की वर्ग संख्या 2 जोड़कर 18 हुआ। इसमें 8 के भाग देने से शेष 2 बचा। यहनाम की काकिणी हुई एवं गाँव की वर्ग संख्या 2 को गुणा करके 4 हुआ। इसमें नाम की वर्ग संख्या 8 जोड़ने से 12 हुआ। फिर इसमें 8 के भाग से शेष बचा यह गाँव की काकिणी हुई। यहाँ नाम की काकिणी अल्प है इसी लिये उत्तम नहीं हुआ। क्योंकि काकिणी धन को कहते हैं। अतः अपना धन अधिक होना चाहिये परन्तु बहुत से लोग गाँव की काकिणी को अधिक होने से शुभ मानते हैं। किन्तु यह युकि और अन्य ग्रन्थों से विरूद्ध होने के कारण मान्य नहीं है।

''यद्भं द्वयङ्कसुतेशदिऽमितमसौ ग्रामः शुभो नामभात्।
स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय पवार्गान्यं गजैः शेषितझ।।
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थदो–
ऽथ द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः।।

(मु0चि0 वास्तु0 प्र0 1)

निषिद्धवास स्थान चक्र

ई0	पू0	अग्नि

उ0	कुम्भ	वृश्चिक	मीन	द0
	मेष	वृष, सिंह, मकर, मिथुन	कन्या	
	तुला	धनु	कर्क	

वा0	प0	नै0

राशिवश गाँव में निषिद्ध स्थान

ग्रामवास में किस राशि वाले को कहाँ निवास करना चाहिये, इसका विचार अवश्य

करना चाहिये। आइये इसी क्रम में हम राशिवश निषिद्ध स्थान का बोध करते हैं। वृष, सिंह, मिथुन और मकर राशिवाले किसी गाँव के बीच भाग में निवास न करें। जैसे – वृश्चिक, मीन कन्या, कर्क, धनु, तुला, मेष और कुम्भ राशि वाले क्रम से पूर्वादि दिशाओं में न बसें तथा अवर्गादि 8 वर्ग क्रम से पूर्वादि दिशाओं में बली होते हैं। इन 8 वर्गों मेंअपने–अपने से पाँचवाँ–पाँचवाँ वर्ग शत्रु होता है।

मुहूर्तचिन्तामणि में इस प्रकार से वर्णन आता है–

''गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च
कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्–
वर्गाः स्वपंचमपरा बलिनः स्युरैन्द्रयाः।। मु0चि0 क02

स्पष्टार्थ वर्ग चक्र

इशानकोण	पूर्व			अग्नि कोण
	शवर्ग	अवर्ग	कवर्ग	
उत्तर	यवर्ग		चवर्ग	दक्षिण
	पवर्ग	तवर्ग	टवर्ग	
वायुकोण		पश्चिम		नैर्ऋत्य

आमने–सामने की दिशा में परस्पर शत्रुता समझना चाहिये। शत्रु की दिशा में वास नहीं करना चाहिये। इसी तरह नक्षत्रों की राशि ज्ञान चक्र से भी शुभाऽशुभ का ज्ञान करना चाहिये।

नक्षत्रों का राशि ज्ञान चक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन
नक्षत्र	अ0 भ0 कृ0	रोहि0 मृग000	आर्द्रा पुनर्वसु 00	पुष्य0 आश्वे0 00	मघा0 पूर्वा0 फा0 00 उ0फा00	हस्त0 चित्रा0 00	स्वाति0 विशाखा0 00	अनु0 ज्ये0 00	मूल0 पू0षा0 उ0षा0	श्रवण0 धनि0 00	शत0 पू0भा 00	उ0भा0 रेवती0 00

अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्ते मद्यषयभ।
चापे मूलत्रयं ज्ञेयं शेष राशौ द्वयं–द्वयम।।

ग्रामवास में नाम राशि की प्रधानता

नाम राशि की प्रधानता भी ग्रामवास विचार में प्रमुख होती है। जो व्यक्ति जिस नगर या ग्राम की नाम राशि तथा निवास के इच्छुक व्यक्ति की नाम राशि के आधार पर निर्णय करने की विधि इस प्रकार है– व्यक्ति की नाम राशि से नगर की नाम राशि यदि 2/5/9/10/11 इन संख्याओं में हो तो ग्राम या नगर वास के लिए शुभ होता है तथा 1/3/4/6/7/8/12 वाँ हो तो फल अशुभ होता है।

काकिण्यां वर्गशुद्धो च वारे छूते स्वरोदये
मन्त्रे पुनर्भूवरणे नाम राशेः प्रधानता।। (संग्रह शिरोमणि पृ0 609)

ग्राम वास में वर्ग विचार

व्यक्ति की नाम राशि तथा नगर की नाम राशि के आधार पर वर्ग ज्ञान का विचार किया जाता है। वर्ग आठ होते हैं–

1– अवर्ग – अ, इ, उ, ए, ओ।
2– कवर्ग – क, ख, ग, घ, ङ।
3– चवर्ग – च, छ, ज, झ, ञ।
4– टवर्ग – ट, ठ, ड, ढ, ण।
5– तवर्ग – त, थ, द, ध, न।
6– पवर्ग – प, फ, ब, भ, म।
7– यवर्ग – य, र, ल, व।
8– शवर्ग – श, ष, स, ह।

उपरोक्त वर्णित से अवर्गादि आठ वर्ग पूर्वादि आठों दिशाओं के प्रदिक्षण क्रम से स्वामी होते हैं, और क्रमशः गरुड़, भार्जार, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग, मेष ये अवर्गादि के अधिपति (स्वामी) होते हैं।

''अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम्।
सर्पाखु मृगावीनां निजपंचमवैरिणामष्टौ। मु0चि0 8/36

इस प्रकार से वर्ग ज्ञान करना चाहिये आइये सरलता के लिए हम तालिका में देखते हैं।

वर्गबोधक तालिका

वर्ग	वर्गनाम	वर्गाधिपति	वर्गाधीन वर्ण	वर्ग की दिशा
1	अवर्ग	गरुड	अ, इ, उ, ए, ऐ, ओ, औ	पूर्व
2	कवर्ग	मार्जार	क, ख, ग, घ्, ङ	आग्नेय
3	चवर्ग	सिंह	च, छ, ज, झ, ञ	दक्षिण
4	टवर्ग	श्वान	ट, ठ, ड, ढ, ण	नैर्ॠत्य
5	तवर्ग	सर्प	त, थ, द, ध, न	पश्चिम
6	पवर्ग	मूषक	प, फ, ब, भ, म	वायव्य
7	यवर्ग	मृग	य, र, ल, व	उत्तर
8	शवर्ग	मेष	श, ष, स, ह	ईशान

वर्ग – काकिणी के अनुसार विचार करने के लिए काकिणी संख्या का ससाधन करना पड़ता है, जो कि पूर्व में भी बताया गया है। सोदाहरण पुनः संक्षेप में निम्नवत् है–

काकिणी साधन

व्यक्ति के नाम का प्रथमाक्षर जिस वर्ग में पड़ता है, उस वर्ग की संख्या को दोगुना कर उसमें नगर के नाम का प्रथमाक्षर जिस वर्ग में पड़ता हो उस वर्ग की वर्ग संख्या को जोड़कर योगफल में आठ का भाग देने पर जो शेष्ज्ञ बचेगा वह उस व्यक्ति की काकिणी संख्या होगी।

इसी तरह नगर की वर्ग संख्या को दो गुना कर उसमें व्यक्ति की वर्ग संख्या को जोड़ने पर जो योगफल आये उसमें आठ का भाग लगाने पर जो शेष बचेगा वही नगर या ग्राम की काकिणी होगी।

"स्ववर्गं द्विगुणितं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं योऽधिकः समृणी भवेत्।।

इसमें ध्यान रहे कि आठ से भाग देने पर यदि कदाचित् शेष शून्य बचे तो उसे शून्य न मानकर आठ ही मानना चाहिए।

जिस नगर की काकिणी संख्या व्यक्ति की काकिणी संख्या से कम हो वह नगर व्यवसाय या आवास की दृष्टि से उपयुक्त नहीं। यदि नगर या ग्राम तथा व्यक्ति की काकिणी संख्या समान हो तो वहाँ रहने से न लाभ होगा और न हानि। अर्थात् वहाँ रहने पर आय व्यय बराबर रहेगी। इस प्रकार राशि एवं वर्ग–काकिणी के अनुसार मनोऽनुकूल निवास हेतु किसी ग्राम या नगर का चयन करना चाहिए। उपरोक्त प्रविधि से आप काकिणी साधन व विधि का बोध कर पाये होंगे। इसी प्रकार किसी भी ग्राम, नगर व क्षेत्र विशेष में वास से पूर्व में काकिणी विचार लाभ–हानि हेतु अवश्य करना चाहिए।

दिशा की अनुकूलता का विचार

निवास हेतु उपयुक्त ग्राम या नगर का चयन करने के अनन्तर ग्राम या नगर के किस हिस्से (किस दिशा) में किस व्यक्ति के आवास हेतु भूखण्ड का चयन करना चाहिए? इसका विचार भी दो तरह से ही किया जाता है–

1– व्यक्ति की नाम राशि के अनुसार।
2– व्यक्ति के वर्ग के आधार पर।

1– व्यक्ति की नाम राशि के अनुसार ग्राम या नगर की दिशा – व्यक्ति की नाम राशि के अनुसार ग्राम या नगर की आठों दिशाओं में से मनोऽनुकूल एवं उपयुक्त दिशा का चुनाव इस प्रकार से किया जाता है–

ग्राम या नगर के दक्षिण भाग में कन्या, नैर्ऋत्य में कर्क, पश्चिम में धनु, वायव्य में तुला, उत्तर में मेष, ईशान में कुम्भ पूर्व में वृश्चिक, अग्नि में मीन राशि वालों को अपनु आवास हेतु भूखण्ड नहीं चुनना चाहिए तथा शेष राशि वाले को ग्राम या नगर के मध्य में निवास नहीं करना चाहिए।

2– व्यक्ति के वर्ग के आधार पर ग्राम या नगर की दिशा – व्यक्ति के वर्ग के आधार पर ग्राम या नगर में निवास हेतु योग्य दिशा का चयन निम्नवत् प्रकार से होगा–

पूर्वादि आठ दिशाओं में अवर्गादि आठों वर्ग क्रमशः बली होते हैं। (पूर्व में वर्ग बोधक तालिका के द्वारा स्पष्ट किया गया है) अपने वर्ग से पंचम (ऽ) वर्ग शत्रु होता है, जैसे– गरुड के वर्ग से पंचम वर्ग सर्प का, मार्जार के वर्ग से पंचम – मूषक का, सिंह के वर्ग से पंचम मृग का, श्वान के वर्ग से पंचम मेष का ये शत्रु होते हैं। अतः निवास हेतु इच्छुक व्यक्ति को ध्यान रखना चाहिए कि अपने वर्ग से पंचम वर्ग की दिशा (अपने शत्रु वर्ग की दिशा) को छोड़कर ग्राम, या नगर, शहर के किसी अन्य भाग में आवास का चयन करना चाहिए इसी प्रकार जो दिशा उपरोक्त दोनों तरीकों से विचार करने पर शुभ आये, ग्राम, नगर या शहर की उसी दिशा में निवास का चयन श्रेष्ठ होता है।

उदाहरण – मान लो विचार करना है कि विनोद कुमार शर्मा के लिए गुड़गाँव के किस भाग में रहना उपयुक्त होगा। अब चूँकि वृष, मिथुन, सिंह एवं मकर राशि वालों को नगर के मध्य भाग में नहीं रहना चाहिए। अतः श्री विनोद कुमार की नाम राशि वृष तो स्पष्ट हो गया कि वे नगर के मध्य भाग को छोड़कर नगर के अन्य किसी भी हिस्से में रह सकते हैं।

अब विनोद के वर्ग के आधार पर इनके निवास के उपयुक्त दिशा का निर्धारण करते हैं। विनोद जी य ''वर्ग'' में आते हैं अतः वर्ग के आधार पर नगर के या ग्राम के उत्तरी हिस्से में निवस करना सर्वाधिक उपयुक्त रहेगा। लेकिन अगर ये नगर के उत्तरी हिस्से में किसी कारणवश नहीं रह सकते हैं तो अपने वर्ग से पाँचवे वर्ग व वर्ग, की दिशा (दक्षिण दिशा) वाले हिस्से को छोड़कर अन्य किसी भी दिशा में रहना लाभकारी होगा। क्योंकि कुछ आचार्यों का मत है कि सम्भव हो तो अपने शत्रु वर्ग के पूर्वापरवर्ती वर्गों की दिशाओं को भी

छोड़ देना चाहिए। इस तरह यदि सम्भव हो तो इन्हें अपने वर्गों की पूर्ववर्ती आग्नेय तथा नैॠत्य दिशाओं वाले भाग को भी छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त ग्राम या नगर में वास की अनुकूलता का विचार करने की अन्य विधियाँ भी हैं।

(क) ग्राम के नामाक्षर की वर्ग संख्या के अनुसार ग्राम के नामाक्षर की वर्ग संख्या को 4 से गुणा करके मनुष्य के नामाक्षर की वर्ग संख्या को उसमें जोड़ें। योगफल में सात (7) का भाग देने पर यदि एक (1) शेष बचे तो उस ग्राम या नगर में वास करने से पुत्र लाभ, 2 शेष बचे तो धन प्राप्ति, 3 शेष बचे तो व्यय, 4 शेष में आयु लाभ, 5 शेष में शत्रुनाश, 6 बचे तो राज्य लाभ और सात (7) बचे तो प्राणनाश (मृत्यु) होता है।

5.3.2 ग्रामवास नक्षत्र चक्र एवं नराकार चक्र द्वारा ग्रामवास फल विचार

वास्तुशास्त्रीय अवकहडाचक्रानुसार ग्राम के नक्षत्र से निवास के इच्छुक व्यक्ति के नाम नक्षत्र तक गिनने पर व्यक्ति का नक्षत्र आदि क्रमशः पहले पाँच नक्षत्रों में पड़े तो लाभ, उसमें आगे के 3 नक्षत्रों में पड़े तो धनक्षय उससे आगे के पाँच नक्षत्रों में पड़े तो धन–धान्य की प्राप्ति, उससे आगे वाले छः नक्षत्रों में पड़े तो स्त्री हानि, उससे अग्रिम एक नक्षत्र हो तो पाद हानि उससे आगे के चार नक्षत्रों में पड़े तो सम्पत्ति लाभ, उससे आगे का एक नक्षत्र हो तो भय, उससे आगे एक अशुभ, उससे आगे एक से भय की प्राप्ति होती है। इसे ठीक से चक्र द्वारा समझा जा सकता है–

ग्राम नक्षत्र से अपने नक्षत्र तक गिनने पर

ग्रामवास नक्षत्र चक्र

स्थान	मस्तक	मुख	कुक्षि	पाद	पृष्ठ	नाभि	गुह्य	दायाँ हाथ	बाँय हाथ
नक्षत्र	5	3	5	6	1	4	1	1	1
फल	लाभ	धन क्षय	धन–धान्य	पाद हानि	सम्पत्ति	भय	क्रन्दन	अशुभ	भय

ग्राम या नगर के नाम नक्षत्र से व्यक्ति के नाम नक्षत्र तक गिने यदि ग्राम के नक्षत्र से प्रथम सात नक्षत्रों के भीतर व्यक्ति का नक्षत्र पड़े तो वह ग्राम या नगर उस व्यक्ति को धनमानसम्मानदायक होता है। यदि उसमें आगे के सात नक्षत्रों में व्यक्ति का नक्षत्र पड़े तो वह नगर। ग्राम व्यक्ति के लिए हानि एवं निर्धनता का द्योतक होता है।

इस सन्दर्भ में हम यहाँ समझने का प्रयास करते हैं। भवन निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शास्त्रविहित जिस उचित आकार वाले भूखण्ड की मिट्टी निर्दोष (शल्यादि दोष रहित) चिकनी तथा ठोस हो उस पर भवन निर्माण करना चाहिए।

भूमि के प्रकार व गुण दोष मिट्टी के गुण–दोषों का विचार उसके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धादि के अनुसार कर लेना चाहिए। भारतीय वास्तुशास्त्र में भवन–निर्माण हेतु उपयुक्त भूमि को चार श्रेणियों में रखा गया है–

1– ब्राह्मणी भूमि – ऐसी भूमि जिसका वर्ण श्वेत, मधुर गन्ध घी के सदृश कुशायुक्त, स्पर्श करने पर जो स्निग्ध एवं सुखद लगे तथा उत्तर की ओर झुकाव वाली हो उसे ब्राह्मणी भूमि कहते हैं। यह भूमि ब्राह्मणों, विद्वानों नैतिक शिक्षा, आध्यात्मिक साधना में लगे लोगों के निवास के लिए श्रेष्ठ मानी गई है। इस प्रकार की भूमि मन्दिर, मठ धर्मशाला, बैंक, शैक्षणिक संस्थानों आदि के निर्माण में श्रेष्ठ मानी जाती है।

2– क्षत्रिय भूमि – ऐसी भूमि जिसका रंग लाल हो, गन्ध रक्त जैसी हो, स्वाद कषैला, स्पर्श कठोर हो, रक्तवर्णीय, पुष्प अधिक हो ऐसी भूमि क्षत्रीय भूमि कहलाती है। यह भूमि शासकीय सैन्य, शस्त्रागार, अधिकारी वर्गों के निवास हेतु तथा क्रीड़ा आदि के स्थल निर्माण हेतु उत्तम मानी गई है। उससे आगे के सात नक्षत्रों में पड़े तो फल सुखसम्पति दायक समझना चाहिए, और यदि अन्तिम सात नक्षत्रों में व्यक्ति का नक्षत्र पड़े तो फल अस्थिरता, पर्यटन एवं प्रवास होता है। आइये नराकार चक्र में समझते हैं–वास्तुरत्नाकार (1–15/17)

<u>ग्रामवास नराकार चक्र</u>

स्थान	मस्तक	पृष्ठ	हृदय	पाद
नक्षत्र	7	7	7	7
फल	धनक्षय	हानि–निर्धनता	सुख–सम्पति	पर्यटन

(ग्रामवास तथा वासकर्ता दोनों की दाशीश मैत्री हो या एकाधिपत्य हो तो वासकर्ता उत्तम समता हो तो सामान्य, शत्रुता हो तो, वास करना हानिप्रद होता है।) वृ0 दै0 रंजन

ग्रामवास हेतु भूखण्ड चयन –

वास्तुशास्त्रीय नियमों के अनुसार वास योग्य ग्राम या नगर के चयन के बाद उस चुने हुए नगर या ग्राम के किस हिस्से में वास करना चाहिए? इसका भी शास्त्र–सम्मत निर्धारण कर लेने के उपरान्त उत्तम भू–खण्ड का चयन ही निर्माण का मुख्य आधार है। अतः उपयुक्त स्थल निश्चित का निर्माण वास्तु के सिद्धान्तों के आधार पर कर लेना आवश्यक है। अतः सर्वप्रथम उत्तम भूखण्ड के चयन की प्रक्रिया को समझ लेना आवश्यक होगा। एतदर्थ उत्तम भूखण्ड के चयन में किन–किन बातों को ध्यान रखना चाहिये

3– वैश्या भूमि – रक्त के समान, दक्षिण की ओर झुकाव वाली यह भूमि हरे–पीले रंग वाली होती है। इसमें अन्न जैसी गन्ध पाई जाती है। इसका स्वाद अम्लीय होता है। कुश एवं कास इस प्रकार की भूमि पर उगते हैं। यह भूमि उपजाव कृषिकार्य, प्रोद्योग, उद्यौगिक कार्यों व व्यवसायिक केन्द्रों के निर्माण हेतु उपयुक्त मानी जाती है।

4– शूद्राभूमि – शूद्रा संज्ञक भूमि काले रंग की होती है। ऐसी भूमि में मद्य जैसी गन्ध अर्थात् दुर्गन्ध होती है तथा स्वाद कड़वा होता है। पश्चिम की ओर झुकी हुई होती है। इसमें कांस आदि निम्न घास उगती है। निवास की दृष्टि से यह अच्छी नहीं मानी जाती है। चर्म शोधन कारखाना, श्रमिक कार्य उद्योग निर्माण हेतु उत्तम मानी जाती है।

5– भूमि के दोष – किसी भी प्रकार के भवन निर्माण हेतु भूखण्ड की मिट्टी का प्रमुख गुण चिकनापन (स्निग्धता) तथा ठोस होना है। इसके विपरीत जिस भूखण्ड की मिट्टी रेतीली या पीली (खोखली) हो। बड़े–बड़े पत्थरों वाली हो वाल्मीकी वाली शलययुक्त हो जहाँ दल–दल, सर्प, बिच्छु, चिटियाँ बिलों में व्याप्त हों, ऊँची–नीची (उबड़–खाबड़) हो ऐसी भूमि गृह निर्माण के लिए सर्वथा त्याज्य है। (दूरतः परिहर्तव्याकर्तुरायुधनीपहा) ऐसी भूमि के लिए यह शास्त्रवचन उपयुक्त है।

6– प्रशस्त भूमि – जहाँ उत्तम औषधियाँ, वृक्ष, लतायें, खूब हरी–भरी रहें। मिट्टी में स्निग्धता (चिकनापन) समानता तथा उपजाऊपन हो ऐसी भूमि मनुष्य के आवास हेतु उत्तम होती है।

वासयोग्य उत्तम भूमि – वास्तुशास्त्रोपदेशष्टाओं के अनुसार जिस भूमि पर जाने से नेत्र और मन सन्तुष्ट हो जाये वह भूमि वास हेतु उत्तम होती है।

7– जीवित भूमि – जिस भूमि पर हरे–भरे वृक्ष लहलहा रहे हों खेती की उपजउत्तमोत्तम हो वह भूमि जीवित भूमि कहलाती है। ऐसी भूमि पर गृह निर्माण से ही गृहपति का जीवन सुखमय होता है।

भूमि परीक्षण

व्यक्ति जिस भू–खण्ड पर गृह निर्माण करना चाहता है वहाँ की भूमि बनाये जाने वाले भवन को ठोस आधार देने वाली है या कहीं पोली (खोखली) या अल्प घनत्व वाली तो नहीं है। इस प्रकार के भूमि परीक्षण हेतु वास्तुग्रन्थों में अनेक सरल रीतियों का वर्णन मिलता है। जैसे

1– जिस भूमि पर गृह निर्माण करना हो उसको बीचों–बीच (मध्य भाग) में गृहपति के हाथ के माप के आधार पर एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ठा खोदकर उसी से निकली हुई मिट्टी से पुनः उस गड्ढे को भर दें। यदि गड्ढा भरने से मिट्टी बच जाये तो उत्तम, बराबर हो जाए तो सम और मिट्टी कम हो जाय तो निषिद्ध होता है। इस निषिद्ध भूमि पर मकान नहीं बनाना चाहिए। **(वास्तुरत्नाकार 1–70)**

2– गृहपति के हाथ के परिमाप के अनुसार एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें पानी डालकर भर दें। फिर देखें कि यदि पानी यथावत रहे तो निवास हेतु उत्तम, उसी क्षण जल सूख जाय तो नाश, जल स्थिर रहे तो स्थिरता, दक्षिणावर्त घूमे तो सुखदायक और वामवर्त घूमे तो मृत्युदायक होता है। **(वास्तुरत्नाकार 1/72/72)**

1.10.i भूमि का ढलान या प्लवत्व

भूखण्ड का चयन करते समय भूमि किस दिशा में ऊँची तथा किस दिशा में नीची है अर्थात् भूमि का प्लवत्व या ढलान किस दिशा में है? और भिन्न–भिन्न दिशाओं एवं विदिशाओं में

भूमि का ढलान होने का क्या फल होगा? इन सब प्रश्नों का विचार अधोवर्णित ढंग से किया जा सकता है–

1– यदि भूखण्ड की भूमि का ढलान पूर्व दिशा की ओर हो तो ऐसी भूमि पर भवन निर्माण करने वाले गृहपति को श्री और लक्ष्मी का लाभ, सर्वांगीण विकास तथा पुत्र प्राप्ति होती है। अर्थात् वंश विस्तार होता है।

2– यदि भूमिका ढलान अग्नि कोण की ओर हो तो ऐसी भूमि पर भवन निर्माण करने से अग्नि भय, आदि दुर्घटना होती है।

3– यदि भूखण्ड का ढलान दक्षिण की ओर हो तो ऐसी भूमि पर मकान बनाने से गृह स्वाी को मृत्युतुल्य कष्ट होते हैं।

4– यदि वास्तु भूखण्ड का ढलान यदि नैॠत्यकोण की ओर हो तो ऐसे स्थान पर निवास करने वाले धन हानि होती है। साथ ही आकस्मिक दुर्घटना की भी सम्भावना रहती है।

5– जिस वास्तु भूमि का ढलान पश्चिम की ओर होता है उस भूखण्ड पर भवन निर्माण करने से धन हानि होती है साथ ही अनेक कष्ट होते हैं।

1– गजपृष्ठ भूमि – जिस वास्तु भूमि का दक्षिण पश्चिम, नैर्ॠत्य तथा वाव्य कोण ऊँचा उठा हो तो ऐसी भूमि को गजपृष्ठ भूमि कहते हैं। इस प्रकार की वास्तु भूमि पर भवन बनाकर वास करने वाले को निरन्तर धन लाभ तथा आयु–वृद्धि होती है।

2– कूर्मपृष्ठ भूमि – जो वास्तु भूमि चारों ओर से नीची तथा मध्यम में ऊपर उठी हुई होती है ऐसी भूमि कूर्मपृष्ठ भूमि कहलाती है। इस प्रकार की भूमि पर निवास निरन्तर उत्साह, सुख एवं सर्वविध धन–धान्य की वृद्धि होती है।

3– दैत्यपृष्ठ भूमि – जब वास्तु भूमि ईशान, आग्नेय तथा पूर्व दिशा में ऊँची हुई तथा पश्चिम में नीची हो तो ऐसी भूमि दैत्यपृष्ठ भूमि कहलाती है। यह भूमि धन–धान्य की हानि और अनेक कष्ट प्रदान करती है।

4– नागपृष्ठ भूमि – जो वास्तु भूमि पूर्व पश्चिम दिशा में लम्बी उत्तर एवं दक्षिण दिशा में

ऊँची तथा बीच में नीची होती है ऐसी भूमि नागपृष्ठ भूमि कहलाती है। इस तरह की भूमि पर निवास करने से मृत्युभय, स्त्री हानि सन्तान तथा शत्रु वृद्धि होती है।

गृह निर्माण योग्य भूमि चयन में विशेष विचार–

''सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे
उद्वेगो देवकुले चतुष्पदे भवति चाकीर्तिः
चैत्ये भय ग्रहकृतं वाल्मीकश्वभ्र सङकुले विपदः
गर्तायान्तु पिपासा कूर्माकारे धन विनाशः।। (वृहत्संहिता वा0नि0अ0)

अर्थात् राजमन्त्री के घर के समीप गृहनिर्माण धननाश, धूर्त पाखण्डी के घर के समीप निर्मित गृह में पुत्र हानि, देवसमूह अर्थात् देवालय के समीप गृह निर्माण में उद्वेग (उच्चाटन) और चौराहे के पास गृह निर्माण करने से अपवाद तथा अपयश प्राप्त होता है। (चैत्य ग्राम–प्रधान वृक्ष, जहाँ ग्रामवासी इकट्ठे होकर बैठते हों) के समीप गृह में वास करने से भूत बाधा होती है। पक्षी आदि प्राणियों के निवास जैसे घोंसला खोखला या कोटर आदि से युक्त

विकृत वृक्ष वाल्मीक भूमि खोखली आदि भूमि में गृह निर्माण करने से धन हानि और विविध क्लेश होते हैं।

टिप्पणी – उपरोक्त स्थानों के समीप सुख चाहने वाले मनुष्य को गृहनिर्माण नहीं करने का जो शास्त्रीय निर्देश है, उसके पीछे प्राच्य विधाओं में निहित यथार्थ के धरातल पर व्यवहारिक महत्व के सूत्रों की उद्भावना करने वाले प्राच्य चिन्तन के वैज्ञानिक गाम्भीर्य की स्पष्ट झलक मिलती है।

बोधात्मक प्रश्न

प्र01– ग्रामवास से क्या तात्पर्य है?

क) ग्राम स्वरूप ख) ग्राम निरीक्षण ग) ग्राम सौन्दर्य घ) ग्राम निवास

प्र02– वर्ग कितने होते हैं?

क) 5 ख) 4 ग) 2 घ) 8

प्र03– भूमि के कितने वर्ण हैं?

क) 3 ख) 4 ग) 5 घ) 8

प्र04– प्लव का अर्थ है–

क) कोण ख) वर्ग ग) आयत घ) झुकाव (ढलान)

5.4 सारांश –

गृह–निर्माण सम्बन्धी विभिन्न विधाओं के यथार्थ ज्ञान की सर्व–साधारण को आवश्यकता होती है। वास्तुशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में इसकी चर्चा तथा एतद्विषयक सूत्र विस्तार से उपलब्ध हैं। किन्तु उनमें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ, आवश्यकताओं एवं परम्पराओं के आधार पर ही निर्माण सम्बन्धी जानकारी दी गई है। जिसे पूरी तरह से समझने में आज सर्व–साधारण जनता को कठिनाई का अनुभव होता है। यद्यपि वास्तुशास्त्र के ये मौलिक सिद्धान्त मानव जीवन को सुखी और सुरक्षित बनाने के लिए आज भी उतने ही महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक हैं। जितने पूर्व काल से प्रचलित थे। इस इकाई के अन्तर्गत हमने ग्रामवास हेतु सभी आवश्यक शास्त्र विधियों का गहनता के साथ अध्ययन किया। जिसके परिणामस्वरूप गृह निर्माण कार्य की वास्तुशास्त्रीय विधियों से आप परिचित हुए होंगे।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

समीप – नजदीक

विविध – अनेक

यथार्थ – मूल स्वरूप

यश – प्रसिद्धि

वास्तुशास्त्रीय – वास्तु शास्त्र से सम्बन्धित

5.6 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

प्र01– घ, प्र02– ख, प्र03– ख, प्र04– घ

5.7 पाठ्य सहायक ग्रन्थ

मुहूर्त चिन्तामणि (वास्तुप्रकरण)

बृहसत्संहिता (वास्तु विधा प्रकरण)

वृहद्वास्तुमाला

वास्तुसार

नारदसंहिता

वास्तु विधा के वैज्ञानिक आधार

समराङ्गणसूत्रधार

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र01– गृहारम्भ का महत्व वास्तुशास्त्रीय परम्परा में क्या है? स्पष्ट कीजिये।

प्र02– काकिणी विचार कैसे होता है? विस्तृत वर्णन कीजिये।

प्र03– ग्रामवास में नराचक्र का विचार कैसे करते हैं?

प्र04– प्रशस्त व त्याज्य भूमि के विषय में उल्लेख कीजिए।

प्र05– गृहारम्भ में भूमि परीक्षण का क्या महत्व है?

खण्ड -2
वास्तुपुरूष एवं भूशोधन

इकाई -1 काकिणी विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र एवं वास्तु का अन्तः सम्बन्ध प्राचीन काल से ही प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र के अनेक विषय ज्योतिष से सम्बन्धित हैं यही कारण है कि वास्तु को ज्योतिष विद्या के अन्तर्गत समाहित किया गया है। लोक परम्परा के अनुसार मानव की अनिवार्य आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान है। यहाँ तक कि ऋषि महर्षि भी गृहस्थ के अन्न के द्वारा ही यज्ञ एवं अपना पेट भरते हैं। यही कारण है कि, कृषक को भी अत्यधिक महत्व प्राचीन ग्रन्थों में दिया गया है। प्राचीन ग्रन्थों में विविध प्रकार के श्लोक, पाठ एवं कथाओं में कृषक को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है साथ ही गृह के विना गृहस्थ की परिकल्पना अधूरी भी है इसके कारण ही गृही का महत्व सर्वाधिक स्वीकार किया गया है। हमारे पारम्परिक ग्रन्थों में गृह निर्माण की कला को वास्तुविद्या के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। साथ ही एक सारणिबद्ध परम्परा के द्वारा वास्तुशास्त्र में उन सभी विषयों का समावेश किया गया है, जिसका सम्बन्ध गृह से है। गृह के योग्य भूमि से प्रारम्भ कर गृह के सौन्दर्य तक सभी विषयों को वास्तुविद्या के अन्तर्गत विस्तृत रुप से दिया गया है। मानव समूह में रहना पसंद करता था जिससे जानवरों से बचकर आपसी सहायता प्राप्त कर सके एवं अपने सुख दुःख को बाँट सके। अतः ग्राम की परिकल्पना उत्पन्न हुई और ग्राम में भी कर्म के आधार पर समूह बनता गया और उसका विचार भी कार्य के आधार पर ग्राम के साथ जोड़कर देखा जाने लगा। यही कारण है कि ग्राम एवं नगर में रहने के लिए व्यक्ति के सुख हेतु विविध प्रकार से विचार किया गया है। जिसमें मनुष्य को सुखपूर्वक एवं शान्तिपूर्वक जीवन की सभी उपलब्धियां प्राप्त हो सके। वास्तुशास्त्र में विस्तृत रुप से इन सभी विषयों की चर्चा प्राप्त होती है। वास्तु के महत्व को परिभाषित करते हुए आचार्य सूत्रधार ने लिखा है कि–

''स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीरेव–गृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।''

–राजल्लभमण्डनम् 1–5

अर्थात् स्त्री–पुत्रादि सभी सुखोपभोगों को उत्पन्न करने वाला धर्म एवं अर्थ तथा काम की पूर्ति करने वाला, सभी प्राणियों का निवास स्थल, शीत–वर्षा एवं धूप से रक्षा करने वाला गृह सुख का मूल है। वापी आदि के निर्माण विश्वकर्मा आदि सभी देवता प्रथमतया गृह की कामना करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस पाठ के द्वारा आप निम्नलिखित उद्‌देश्यों की पूर्ति कर सकते हैं।

(क) ग्राम की अनुकूलता में दक्षता प्राप्त होगी।

(ख) व्यापार कारक स्थान की भी स्थिति के ज्ञान से निपुणता प्राप्त होगी।

(ग) अर्थप्रद एवं हानि के ज्ञान से गृह निर्माण में आर्थिक सरलता मिलेगी।

(घ) व्यर्थ के नुकसान से बच सकते हैं।

(ङ) प्राच्य पारम्परिक विद्या का लाभ प्राप्त होगा।

(च) मित्रता एवं सेवक रखने में लाभ की दृष्टि से दक्षता प्राप्त होगी।

1.3 काकिणी परिचय

प्रस्तुत पाठ काकिणी विचार के यदि लक्ष्य का अध्ययन करें तो पाते हैं कि, इससे सबसे पहले हमें पूर्व सूचना जैसी ज्ञान की उपलब्धि होगी, जिससे हम अपने व्यय का ध्यान रखेगें। यदि हमारे लिए यह स्थान लाभप्रद नहीं है तो हम अपव्यय से बच सकते हैं। वास्तुशास्त्र का यह प्रारम्भिक ज्ञान कहलाता है काकिणी विचार। इसके नामकरण के सापेक्ष यदि विचार करें तो पाते हैं कि क––आदि व्यजन वर्णों के द्वारा विचारणीय जो विषय हैं उन्हें काकिणी विचार से अभिहित किया गया है। स्वर को यहाँ गौड़ मानकर व्यंजन वर्णों के प्रमुखाधार पर गणना की गई है। यही कारण है कि इसको हम काकिणी विचार नामकरण करते हैं। हमारे मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की यह प्रायोगिक आधार पर निर्मित वास्तुविद्या अत्यन्त लोकोपकारक है।

इसलिए विविध आधार पर अपने द्वारा किये गये परीक्षणों का आचार्यों ने लिपिबद्ध किया है। वास्तुशास्त्र के प्रारम्भिक ग्रन्थ से आरम्भ का उत्तरवर्ती ग्रन्थ तक यह विषय परिलक्षित होता है। अतः सभी ग्रन्थों में काकिणी की उपस्थिति इसकी

विशेषता को स्वयं प्रकट कर रही है। यद्यपि विषय की दृष्टि से यह इकाई अत्यन्त लघु है फिर भी इसको हम सरलतापूर्वक विवेचन कर आपको समझाते हैं कि कैसे हम काकिणी का विचार करेंगें। काकिणी विचार का मुख्य लक्ष्य है, जिस स्थान पर हम रहना या कोई कार्य करना चाहते हैं यह हमारे लिए फायदेमंद रहेगा की नहीं। कोई भी व्यक्ति आपसे यह पूछ सकता है दैवज्ञ आप बतावें हम अमुक स्थान में घर बनावें की नहीं? या अमुक कार्य को करें की नहीं? एसे प्रश्नों का उत्तर हम काकिणी विचार के द्वारा ही दे सकते हैं।

1.3.1 काकिणी विचार के मुख्य साधन–

(क) ग्राम/नगर, कालोनी या मुहल्ला का नाम

(ख) जिस व्यक्ति को निवास करना है उसका नाम

(ग) वर्ग का ज्ञान

(घ) काकिणी विचार विधि

1.3.2. मुख्य श्लोक–

काकिणी विचार हेतु वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में 2 प्रकार के श्लोक प्राप्त होते हैं। जिनका भाव एक ही है परन्तु शब्द भिन्न है। प्रथम पक्ष (वास्तु रत्नाकर के आधार पर)

''स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् योऽधिकः स ऋणी भवेत्।।
अष्टाभिश्च हरेद्भागं–

–वास्तुरत्नाकर 1.23

अर्थात् अपने वर्ग को दूना करके दूसरे के वर्ग में जोडें पुनः योग में 8 का भाग दे, जिसका भी शेष अधिक हो वह ऋणी होता है। यहाँ ऋणी का अर्थ जो दूसरे को लाभ दे।

दूसरे पक्ष में जो श्लोक वर्णित है उसके स्वरुप इस प्रकार हैं।

''स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत्।
अष्टभिश्च हरेद्भागं यस्याधिकः सोऽर्थदः।।''

यहाँ अर्थ दोनों का एक ही है परन्तु ''यस्याधिकः सोऽर्थदः'' पद से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि स्थान का वर्ग शेष अधिक होना श्रेयस्कर है। श्लोक का भाव आपने समझ लिया अब आपको हम सभी साधनों को एकत्रित करके फिर उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयास करेगें कि इसका प्रयोग कैसे होगा।

(1) ग्राम/नगर/मुहल्ला/कालोनी के नाम के प्रारम्भ के वर्ण का वर्ग संख्या जानेगें। जैसे– वाराणसी (स्थान) में 'व' वर्ण की संख्या स्थान का वर्ग होगा। दूसरा उदाहरण काशी' (स्थान) का क–वर्ण की संख्या होगी।

(2) निवास कर्त्ता का वर्ग अर्थात् जिस व्यक्ति को निवास करना है उसका वर्ग संख्या जानना है तो निवास कर्ता के नाम का आदि वर्ण वर्ग का ज्ञान कराता है। जैसे महेश (व्यक्ति) का वर्ग ज्ञान में 'म' वर्ण का वर्ग संख्या लेंगें।

(3) वर्ग–ज्ञान (सारिणी)

अ वर्ग	अ से अः तक	1
क वर्ग	क से ङ तक	2
च वर्ग	च से ञ तक	3
ट वर्ग	ट से ण तक	4
त वर्ग	त से न तक	5
प वर्ग	प स म तक	6
य वर्ग	य र ल व	7
श वर्ग	श ष स ह	8

नोट– यहाँ क्ष, त्र, ज्ञ के लिए मूल वर्ण क्रमशः क, त एवं ज जानना चाहिए।

1.4 काकिणी विचार विधि–

(1) $\frac{\text{स्थान वर्गाङ्क x 2 + व्यक्ति वर्गाङ्क}}{8}$

= शेष (स्थान का वर्गाङ्क)

(2) $\frac{\text{व्यक्ति वर्गाङ्क x 2 + स्थान वर्गाङ्क}}{8}$

= शेष (व्यक्ति का वर्गाङ्क)

नोट– स्थान का वर्गाङ्क अधिक होना ही लाभप्रद है।

1:4:4. उदाहरण –

पूर्वोक्त श्लोक के द्वारा उत्पन्न सूत्र से कल्पना द्वारा उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्थान – वाराणसी (अर्थात् महेश के लिए वाराणसी कैसा स्थान रहेगा।)

व्यक्ति – महेश

वाराणसी में 'व' वर्ण का अङ्क = 7

महेश में 'म' वर्ण का अङ्क = 6 (उपर्युक्त चक्र द्वारा)

सूत्रानुसार वाराणसी की काकिणी

$= \frac{7 \text{ x } 2 + 6}{8}$

= शेष = 4 यह वाराणसी की काकिणी हुई

महेश की काकिणी

$= \frac{6 \text{ x } 2 + 7}{8}$

= शेष 3 यह महेश की काकिणी हुई।

यहाँ वाराणसी की काकिणी अधिक है (4) और महेश (3) की काकिणी कम है। अतएव महेश को वाराणसी में रहना लाभप्रद होगा।

2. दूसरा उदाहरण

स्थान – रामपुर

व्यक्ति – सुभाष

यहाँ पूर्वोक्त सूत्रानुसार दोनों की काकिणी निकालते हैं।

रामपुर के 'र' का वर्गाङ्क = 7

सुभाष के 'स' का वर्गाङ्क = 8

सूत्रद्वारा

– रामपुर की = $\frac{7 \times 2 + 8}{8}$

= शेष = 6 काकिणी

– सुभाष की = $\frac{8 \times 2 + 7}{8}$

= शेष = 7 काकिणी

यहाँ स्थान के तुलना में व्यक्ति की काकिणी अधिक है। अतः ऐसी स्थिति में सुभाष के लिए रामपुर लाभप्रद नहीं है।

3. तीसरा उदाहरण–

स्थान – श्रीरामनगर कालोनी

व्यक्ति – चन्द्रशेखर

पूर्वोक्त वर्ग ज्ञान द्वारा वर्गाङ्क जानने पर–

श्रीरामनगर कालोनी का आदि वर्ण 'श' का वर्गाङ्क = 8

चन्द्रशेखर का आदि वर्ण 'च' का वर्गाङ्क = 3

सूत्रानुसार काकिणी

(1) श्रीरामनगर कालोनी का

= $\frac{8 \times 2 + 3}{8}$

= शेष 3 काकिणी हुई।

(2) चन्द्रशेखर का

= $\frac{3 \times 2 + 8}{8}$

= 6 शेष काकिणी हुई।

यहाँ भी चन्द्रशेखर की काकिणी अधिक है श्रीरामनगर कालोनी से जो लाभप्रद नहीं है। क्योंकि अर्थद नहीं है।

विशेष– ज्योतिर्निबन्ध प्रगृति ग्रन्थान्तरों में भी काकिणी विचार नाम से केवल उपर्युक्त प्रविधि का ही उल्लेख मिलता है। जिसमें 'क' आदि वर्गों के आधार पर विचार–विमर्श किया जाता है कि कहाँ कहना हमारे लिए लाभप्रद होगा। इस प्रकार के स्थितियों के द्वारा ही स्थान का निर्धारण सरलता से किया जा सकता है। इसका प्रयोग 4 कार्यों के लिए किया जा सकता है।

(1) गृह निर्माण हेतु

(2) मित्रता हेतु

(3) सेव्य–सेवक हेतु

(4) व्यापार प्रतिष्ठान हेतु

उपर्युक्त सभी क्षेत्रों में लाभ–हानि की दृष्टि से विचार करते हुए काकिणी का लाभ लिया जा सकता है। मित्रता में यदि दोनों की काकिणी बराबर हो एवं नाडी एक हो तो उत्तम माना जाता है। इस प्रकार सेवक से स्वामी को लाभ होना चाहिए। अतः स्वामी का काकिणी कम तथा सेवक की काकिणी अधिक होनी चाहिए। व्यापार प्रतिष्ठान के परिज्ञान हेतु काकिणी निकालने पर व्यापारकर्ता या फार्म के नाम से व्यापार के स्थान के साथ काकिणी का ज्ञान करें, इससे यह पता चलेगा कि व्यापार कर्ता को किस स्थान पर व्यापार स्थल रखना उचित होगा। अन्यथा हानि की स्थिति में काकिणी का विचार कर व्यापार स्थल का परिवर्तन करना लाभप्रद होता है।

1.4.1 अन्य भेद–

मतान्तर द्वारा मुहूर्तचिन्तामणि के पीयूष धारा टीका में एक अन्य विषय भी वर्गाङ्ग से विचार किया गया है। यद्यपि यह काकिणी से इतर है तथापि विषय दृष्टया सम्बन्ध रखता है। अतएव इसका विचार करना आवश्यक है।

"अकारादिषु वर्गेषु दिक्षु पूर्वादितः क्रमात्
गृध–मार्जार–सिंह–श्व–सर्पाखु–मृग–शाशकाः।

दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः

रिपुवर्गं परित्यज्य शेषवर्गाः शुभप्रदाः।।"

इसका परिज्ञान हम आलेख द्वारा करते हैं–

वर्ग	दिक्	स्वामी	शत्रु वर्ग
अ वर्ग	पूर्व	गरुण	सर्प
क वर्ग	अग्नि	मार्जार	मूषक
च वर्ग	दक्षिण	सिंह	मृग
ट वर्ग	नैऋत्य	श्वान	शशक
त वर्ग	पश्चिम	सर्प	गरुण
प वर्ग	वायव्य	मूषक	मार्जार
य वर्ग	उत्तर	मृग	सिंह
श वर्ग	ईशान	शशक	श्वान

यहाँ श्लोक का आशय स्पष्ट किया गया है टेबल के माध्यम से परन्तु मुख्यांश ये है कि, दोनों के वर्ग परिज्ञान में वैरी (शत्रु वर्ग) का होना निषिद्ध है। अतएव शत्रुवर्ग छोड़कर शेष वर्ग का चयन करना चाहिए। जिससे आपसी कलह की संभावना न हो। अन्य प्रसंग में भी कहा गया है कि–

"साध्यवर्गं पुरः स्थाप्यं पृष्ठतः साधकं न्यसेत्।

विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं भवेत्।।"26

"व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं भवेत्।

धनाधिकं स्वल्पमृणं सर्वसम्पत्प्रदं नृणाम्।।"27

–वास्तुरत्नाकर/प्रथम अध्याय

यहाँ भी एक गणितीय सूत्र के द्वारा लाभ का विचार किया गया है आशय यह है कि साध्य (ग्राम) की वर्ग संख्या को पहले रखकर उसके बाद साधक (गृही) की वर्ग संख्या स्थापित करे, योग में 8 का भाग देने पर शेष साधक का धन संज्ञक होता है।

पुनः साधक (गृही) की वर्गसंख्या को पहले रखकर बाद में साध्य वर्ग की संख्या स्थापित कर बनने वाले योग में 8 का भाग देने पर शेष साधक का ऋण संज्ञक होता है। यहाँ धन के अपेक्षा ऋण का कम होना श्रेयस्कर माना गया है।

उदाहरण– माना साध्य – काशी (वर्गाङ्क = 2)

साधक – राम (वर्गाङ्क = 6)

अब विचार करते हैं सूत्रानुसार 2 पहले रखा 7 बाद में 27 बना 8 का भाग देने पर शेष =3 यह धन संज्ञक हुआ साधक यानी राम का।

पुनः साधक राम का वर्गाङ्क 7 एवं साध्य 2 =72 इसमें 8 का भाग दिया तो शेष 0 हुआ त्रण संज्ञक यह मान 0 आया। यहाँ विचार करने पर राम के लिए काशी धनप्रद है और ऋण नहीं है। अतः वास करना उत्तम है।

उपर्युक्त प्रकार से हम सरलता से विचार कर सकते हैं किसी स्थान एवं स्थान में वास करने वाले के लिए इसी प्रक्रिया द्वारा लाभ–हानि ज्ञान किया जा सकता है।

1.5 सारांश–

(क) काकिणी का विचार घर बनाने हेतु स्थान के चयन में महत्वपूर्ण है।

(ख) काकिणी परिज्ञान द्वारा हम हानि से बचकर लाभ की दृष्टि से निर्माण कार्य कर सकते हैं।

(ग) न केवल गृह निर्माण अपितु मित्रता एवं सेवक रखने में भी इसका विचार किया जा सकता है।

(घ) आज व्यापार का प्रचलन अधिक है। ऐसी स्थिति में व्यापार हेतु स्थान के निर्धारण में काकिणी का लाभ लिया जा सकता है।

(ङ) काकिणी में प्रतिपादित वर्गज्ञान की परम्परा का वास्तुशास्त्र के विविध स्थलों में प्रयोग किया गया है।

(च) इस पाठ में लिखित अन्य वर्गाङ्क आधारित प्रक्रिया द्वारा भी लाभ–हानि का विचार किया जा सकता है।

(छ) सर्वदा इसका प्रयोग गृह निर्माण से पूर्व किया जाना चाहिए परन्तु व्यापार में हानि की स्थिति में भी इसके द्वारा परिज्ञान कर हानि से बचा जा सकता है। जैसे फार्म का नाम बदलकर या स्थान का नाम बदलकर आदि।

1.6 पारिभाषिक पदावलि –

काकिणी = क वर्गादि से बनने वाली सारिणी

वर्ग = विभाजन (अङ्क के आधार पर)

स्व = अपना, जिसका विचार किया जाए

पर = दूसरा, जिसके साथ विचार किया जाए

ऋणी = जो दूसरे को लाभ प्रदान करे

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्नोत्तर –

(1) वर्गों की संख्या होती है?

(क) 4 (ख) 7 (ग) 8 (घ) 5

(2) काकिणी का सम्बन्ध है?

(क) जल से (ख) सामुद्रिक से (ग) ज्योतिष से (घ) वास्तु से

(3) प वर्ग की संख्या है?

(क) 2 (ख) 6 (ग) 8 (घ) 5

(4) य वर्ग की संख्या है?

(क) 2 (ख) 7 (ग) 8 (घ) 6

(5) ह वर्ग की संख्या है?

(क) 8 (ख) 2 (ग) 4 (घ) 7

(6) अ वर्ग का स्वामी है?

(क) मार्जार (ख) मूषक (ग) गृध (घ) गरुण

(7) मृग का शत्रुवर्ग है?

(क) सर्प (ख) मूषक (ग) सिंह (घ) गरुण

(8) ज वर्ण की संख्या है?

(क) 2 (ख) 3 (ग) 4 (घ) 5

(9) व वर्ग का दिक् है?

(क) पूर्व (ख) पश्चिम (ग) नैऋत्य (घ) उत्तर

(10) 'शशक' का शत्रुवर्ग है?

(क) श्वान (ख) सिंह (ग) गृध (घ) सर्प

प्रश्न	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
उत्तर	ग	घ	घ	ख	क	घ	ग	ख	ख	क

1.8 सन्दर्भ एवं सहायक पाठ्यग्रन्थ –

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	लेखक / सम्पादक
1.	वास्तुरत्नाकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	विन्धेश्वरी प्रसाद
2.	राजलल्लभमण्नम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	शैलजा पाण्डेय
3.	वास्तुमण्डनम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	श्रीकृष्ण जुगनू
4.	वास्तु सौख्यम्	सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी	पं. कमलाकान्त शुक्ल
5.	बृहद्दैवज्ञरंजन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी
6.	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7.	वास्तुप्रबंध	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	प्रो. राजमोहन उपाध्याय

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न/दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

(क) वर्गाङ्कों का परिचय स्पष्ट करें।

(ख) काकिणी के महत्व पर प्रकाश डालें।

(ग) काकिणी विचार लिखें।

(घ) वास्तुशास्त्र में काकिणी के स्वरुप को सोदाहरण लिखें।

(ङ) काकिणी सन्दर्भित अन्य विषयों पर प्रकाश डालें।

इकाई - 2 वास्तुपुरूष का स्वरूप

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 वास्तुपुरूष का परिचय

2.3.1 प्रभेद

2.4 विशेष

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक पदावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना –

भारतीय परम्परा की विद्यायें अपनी विशेष विधा से सर्वदा संसार को चमत्कृत करते रहीं हैं। जब विश्व में निर्माण से सम्बन्धित कोई भी विषय वस्तु नहीं था उस कालखण्ड में हमारे प्राचीन ऋषियों की कल्पनाओं ने एक विशिष्ट परम्परा का निर्माण किया। पुराण कथानकों के माध्यम से विज्ञान जैसे दुरुह विषयों का उपस्थापन एवं उनके अन्तर्निहित तथ्यों का उद्घाटन सर्वदा ही होता रहा है। यही कारण है कि हमारी विद्या आज भी सर्वाधिक प्रभावशाली एवं प्राचीन है। वास्तुशास्त्र के 18 प्रवर्तक आचार्यों ने अपनी अपनी मेधा के द्वारा विविध वास्तुशास्त्रीय क्षेत्रों का लेखन एवं प्रवर्तन किया है जिसका स्वरुप हमारे समक्ष उपस्थित होता है। विज्ञान के तथ्य को धार्मिक आधार या देवत्व रुप में प्रतिष्ठापित करना हमारे प्राचीन आचार्यों की अनूठी देन रही है। किसी विषय को धार्मिक बताकर उसकी रक्षा तथा मानव हिताय उसका संरक्षण एवं पालन करना प्रत्यक्षतया दिखता है। वृक्षों में देवता, पंचमहाभूतों में देवत्व एवं मानव हिताय स्त्री, गौ आदि को धार्मिक आधार प्रदान कर संसार में एक नया संरक्षण का तथ्य उपस्थापित करना सर्वदा स्तुत्य प्रयास है।

वास्तुपुरुष का स्वरुप भी इसका ही एक उदाहरण है। वास्तुस्थल में निर्माण के पूर्व विविध विषयों का चिंतन तथा गृहनिर्माण स्थल पर देवता के रुप से एक वास्तुपुरुष की परिकल्पना नितान्त विचारणीय है।

2.2 उद्देश्य –

I. वास्तुशास्त्र की प्राचीनता का ज्ञान होगा ।
II. धार्मिक स्वरुप के पीछे की वैज्ञानिकता के रहस्य ज्ञान में निपुणता प्राप्त होगी।
III. वास्तुपुरुष की परिकल्पना के पीछे मूलभूत तथ्यों के प्रकाशन में दक्षता मिलेगी।
IV. वास्तुपुरुष के स्वरुप के परिज्ञान में मदद मिलेगी।
V. वास्तुपुरुष के स्वरुप ज्ञान से मानचित्र निर्माण में सहायता प्राप्त होगी।
VI. वास्तुशास्त्र के विविध वैज्ञानिक पक्षों के रहस्योद्घाटन में मदद मिलेगी।

2.3 वास्तपुरूष का परिचय–

वास्तुशास्त्र में वास्तु के अधिष्ठातृ देवता के रुप से वास्तुपुरुष की परिकल्पना की गई है जिसका मुख्य लक्ष्य वास्तु भूमि के मानचित्र एवं उससे लाभ एवं शान्तिपूर्वक जीवन यापन से है। वास्तुपुरुष की परिकल्पना का मुख्याधार धार्मिक एवं वैज्ञानिक है। इसके पीछे एक कथानक को आचार्य वराह मिहिर बृहत्संहिता के वास्तु अध्याय में बताते हैं–

इस प्रकार से अपराजित पृच्छा नामक ग्रन्थ में भी विस्तृत रुप से देवासुर संग्राम एवं उसमें उद्भूत विराट पुरुष को देवताओं द्वारा अधोमुख स्थापित करने पर भूमि पर वास्तुपुरुष की परिकल्पना का दृश्य प्राप्त होता है।

इस प्रकार वास्तुपुरुष का स्वरुप 2 आधार पर विवेचित किया गया है।

(1) युद्ध के समय (देवासुर संग्राम में)

(2) जमीन पर न्यसित होने पर (वास्तुवेदी के रुप में)

वास्तुपुरुष के युद्धकालीन स्वरुप पर विचार करें तो पाते हैं कि यह धरती के लिए अतीव विघातक एवं शत्रुवर्ग के लिए अहितकर प्रतीत होता है परन्तु वास्तु वेदी के रुप में शिख्यादि देवताओं के द्वारा भिन्न–भिन्न स्थानों पर न्यसित होना विविध प्रकार के विषयों को प्रदर्शित करता है। पंचमहाभूतों से निर्मित इस संसार का सम्बन्ध मनुष्य के साथ सतत् प्रदर्शित होता है। **ग्रहव्र्याप्तमिदं सर्वं** की आभा संसार को सर्वदा से चमत्कृत करते रही है। यही कारण है कि वास्तुपुरुष के स्वरुप में पंच महाभूतों के अनेक तत्वों को यथा–स्थान न्यसित करके उनकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। 64 पदों के द्वारा विविध देवताओं का न्यास वास्तुपुरुष के विराट स्वरुप का परिचायक ही है। कल्पित या साक्षात् विद्यमान ये देवगण हमें अपनी गुण धर्मिता से सिंचित करते हुए हमे तत् तत् गुणों का आधान करते हैं साथ ही हमें उन्नत होने के अवसर भी प्रदान करते हैं।

अतः वास्तुपुरुष के स्वरुप में हम सब विराट पुरुष की अर्चना करते हैं जिसका सम्बन्ध साक्षात् हमारे जीवनोपयोगी वस्तुओं से है। जैसे वायु, जल, अग्नि आदि। मानव संसार से सबसे बुद्धिमान प्राणी है। यह सभी स्थलों या विषयों को अपनी बुद्धि के सापेक्ष तौलता है फिर लाभ की कसौटी पर कसकर तब अपनाता है।

यही कारण है कि इतने वर्षों से हमारी वास्तु की परम्परा अवच्छिन्न रुप से गतिमान है।

2.3.1 प्रभेद–

वास्तु पुरुष के स्वरुप परिज्ञान में 2 प्रकार की स्थिति का निदर्शन होता है। 2 प्रकार स्थितियाँ स्वरुप के सापेक्ष प्राप्त होती है।

(क) वास्तुपुरुष की उत्पत्ति एवं स्थिति–

उत्पत्ति के प्रसंग में यद्यपि पूर्व में भी चर्चा हुई है परन्तु श्री सूत्रधार ने राजवल्लभमण्डनम् नामक ग्रन्थ में बताया है कि,

''सङ्ग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः
स्वेदो महेशात् क्षितौ।
तस्माद् भूतमभूच्च भीतिजननं
धावापृथिव्योर्महत्।
तद्देवैः रसभा विगृह्य निहितं
भूमावधोवक्त्रकम्।
देवानां वसनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव
पूज्यो बुधैः।।

–राजवल्लभमण्डनम् 2.1

अर्थात् अन्धक नामक असुर तथा भगवान शिव के बीच सम्पन्न होने वाले युद्ध के समय भगवान शिव के शरीर से स्वेद अर्थात् पसीना निकला और भूमि पर गिरा उससे आकाश एवं भूमि को ढकने वाला भयोत्पादक महान् जीव उत्पन्न हुआ। उस जीव को देवताओं ने युद्ध के दौरान ही बलपूर्वक पकड़कर भूमि पर नीचे मुख करके गिरा दिया। यहाँ देवताओं के उस जीव के उपर निवास होने के कारण उस जीव को वास्तुपुरुष की संज्ञा दी गई और वह वास्तुपुरुष पूज्य हो गया जगत् में। वास्तुपुरुष के अङ्ग स्वरुप प्रकरण में बताया गया है कि,

''पादौ रक्षसि कं शिवेऽह्निकरयोः सन्धी च कोणद्वये।

–राजवल्लभ 2.2

वास्तुमण्डल में वास्तुपुरुष का शिर ईशानकोण, दोनों पैर नैऋत्य कोण तथा दोनों हाथ क्रमशः वायव्य एवं अग्नि कोण में सन्धिस्थल होता है।

ईशान कोण अग्निकोण

वायव्यकोण नैऋत्य कोण

इस प्रकार प्रत्येक वास्तु भूमि पर वास्तुपुरुष की उत्पत्ति की परिकल्पना का अङ्ग का न्यास किया जाता है जिसमें देवताओं के पद–न्यास द्वारा स्थापना भी निर्धारित की गई है।

वास्तुशास्त्र में इस प्रकार के उत्पतिपूर्वक अङ्ग का निर्धारण बताया गया है।

(ख) वास्तुपद या वास्तुचक्र की स्थिति–

प्राचीन ग्रन्थ बृहत्संहिता को देखकर मत पता चलता है कि 2 प्रकार के पद अति महत्वपूर्ण है।

(1) एकाशिति पद (वास्तु)– बृहत्संहिता में इस प्रकार चर्चा की गई है।

एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः।
अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्वाह्यकोष्ठस्थाः।।

अर्थात् इक्यासी पद के क्षेत्र बनाने के लिए दश रेखा पूर्वापरा और दश रेखा दक्षिणोत्तरा बनानी चाहिये, इस तरह रेखायें करने से 81 कोष्ठ का क्षेत्र बन जायगा। उस कोष्ठ के बाहर तेरह और भीतर बत्तीस देवता होते हैं।

शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्रसूर्यसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च।
ऐशान्यादिक्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे।।
पूषा वितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभृङ्गराजमृगाः।
पितृदौवारिकसुग्रीवकुसुमदन्ताम्बुपत्यसुराः।।
शोषोऽथ पापयक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च।
भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिर्दितिरिति क्रमशः।।

देवतास्थापन के लिए कहते हैं किपूर्वोक्त क्षेत्र में ईशान कोण से लेकर क्रम से शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और अन्तरिक्ष देवता हैं। अग्नि कोण से लेकर क्रम से अनिल, पूषा, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज और मृग देवता हैं। नैर्ऋत्य कोण से लेकर क्रम से पिता, दौवारिक, सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, शोष और पापयक्ष्मा देवता हैं। वायव्य कोण से लेकर क्रम से रोग, सर्प, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अदिति और दिति देवता हैं।

मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठकाधिपोऽस्यार्यमा स्थितः प्राच्याम्।
एकान्तरात् प्रदक्षिणमस्मात् सविता विवस्वांश्च।।
विबुधाधिपतिस्तस्मान्मित्रोऽन्यो राजयक्ष्मनामा च।
पृथिवीधरापवत्सावित्येते ब्रह्मणः परिधौ।।
आपो नामैशाने कोणे हौताशने च सावित्रः।
जय इति च नैर्ऋते रुद्र आनिलेऽभ्यन्तरपदेषु।।

पूर्वोक्त क्षेत्र के अन्तर्गत ये देवता विराजमान हैं। जैसे मध्य के नव कोष्ठों में ब्रह्मा, ब्रह्मा से पूर्व अर्यमा, प्रदक्षिण क्रम से एक पद व्यवहित करके सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर, आपवत्स–ये आठ देवता एकान्तर से ब्रह्माजी की परिधि को व्याप्त करके विराजमान हैं। साथ ही ईशान कोण में पर्जन्य के नीचे आप, आग्नेय कोण में अन्तरिक्ष के नीचे सावित्र, नैर्ऋत्य कोण में दौवारिक के नीचे जय और वायव्य कोण में पापयक्ष्मा के नीचे रुद्र स्थित हैं।

आपस्तथापवत्सः पर्जन्योऽग्निर्दितिश्च वर्गोऽयम्।
एवं कोणे कोणे पदिकाः स्युः पञ्च पञ्च सुराः।।
बाह्या द्विपदाः शेषास्ते विबुधा विंशतिः समाख्याताः।
शेषाश्चत्वारोऽन्ये त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते।।

इस क्षेत्र के ईशान कोण में आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि, दिति– ये पाँच देवता एकपदिक (एक–एक पद के स्वामी) हैं। इसी तरह प्रत्येक कोण में पाँच–पाँच देवता एकपदिक हैं। जैसे– आग्नेय कोण में सविता, सवित्र, अनल या अनिल, अन्तरिक्ष, पूषा। नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र, जय, दौवारिक, पिता, मृग और वायव्य कोण में राजयक्ष्मा, रुद्र, पापयक्ष्मा, रोग, नाग– ये पाँच देवता एकपदिक हैं। शेष बाह्य कोष्ठ

में स्थित देवता द्विपदिक हैं, जो कुल बीस होते हैं। जैसे–पूर्व में जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश। दक्षिण में वितथ, बृहत्क्षत, यम गन्धर्व, भृङ्गराज। पश्चिम में सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, शोष और उत्तर में मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग और अदिति– ये द्विपदिक देवता हैं। ब्रह्मा से पूर्व आदि दिशाओं में शेष अर्यमा आदि चार देवता (अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर) त्रिपदिक हैं।

पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरुषोऽयमवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी।
आपो मुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च।।
पर्जन्याऽद्या बाह्या दृक्श्रवणोरःस्थलांसगा देवाः।
सत्याद्याः पञ्च भुजे हस्ते सविता च सावित्रः।।
वितथो बृहत्क्षतयुतः पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च।
ऊरू जानु च जङ्घे स्फिगिति यमाद्यैः परिगृहीताः।।
एते दक्षिणपार्श्वे स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः।
मेढ्रे शक्रजयन्तो हृदये ब्रह्मा पिताऽङ्घ्रिगतः।।

यह वास्तु पुरुष ईशान कोण की ओर शिर करके अधोमुख होकर स्थित है। इसके शिर में अग्नि, मुख में आप, स्तन में अर्यमा और छाती में आपवत्स स्थित है। बाह्य कोष्ठस्थित पर्जन्य आदि देवता नेत्र, कान, छाती और कन्धे में स्थित हैं। जैसे–नेत्र में पर्जन्य, कान में जयन्त, छाती में इन्द्र और कन्धे में सूर्य स्थित हैं। तथा भुजा में सत्य आदि पाँच देवता (सत्य, भृश अन्तरिक्ष, अनिल और पूषा), हाथ में वितथ और बृहत्क्षत, पेट में विवस्वान्, ऊरु में यम, जानु में गन्धर्व, जंघा में भृङ्गराज और कुल्ले में मृग स्थित है। ये सब देवता दक्षिण अङ्ग के हैं। इसी तरह वाम पार्श्व के सभी अंगो में देवता हैं। जैसे कि वाम स्तन में पृथिवीधर, नेत्र में दिति, कान में अदिति, छाती में भुजग, कन्धे में सोम, बाहु में भल्लाट, मुख्य, अहि, रोग और पापयक्ष्मा, हाथ में रुद्र और राजयक्ष्मा, बगल में शोष और असुर, ऊरु में वरुण, जानु में कुसुमदन्त, जंघा में सुग्रीव तथा कुल्ले में दौवारिक स्थित है। इसी तरह लिंग में शक्र और जयन्त, हृदय में ब्रह्मा और पाँव में पिता स्थित हैं। इस तरह इक्यासी पद में नगर, ग्राम, गृह आदि के सम्बन्ध में वास्तु पुरुष के अंगों का विभाग करना चाहिये।।

यहाँ 81 पदों में देवता के न्यास के साथ ही वास्तुपुरुष के अंग–न्यास में स्थानों को निर्देशित किया गया है। प्रस्तुत एकाशिति पद के द्वारा इनकी परिकल्पना की युक्ति को सरलता से समझा जा सकता है।

ई **पू** **अनलः** **आ**

शिखी	पर्जन्यः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	अन्तरिक्षः	अनिलः
दितिः	आपः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	सावित्रः	पूषा
अदितिः	अदितिः	आपवत्सः	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	वितथः	वितथः
भुजगः	भुजगः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	बृहक्षतः	बृहक्षतः
सोमः	सोमः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	यमः	यमः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	गन्धर्वः	गन्धर्वः
मुख्यः	मुख्यः	राजयक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	मित्रः	इन्द्रः	भृंगराज	भृंगराज
नागः	रुद्रः	शोषः	असुर	वरुणः	कुसुमदन्तः	सुग्रीवः	जयः	मृगः
रोगः	पापयक्ष्मा	शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुमदन्तः	सुग्रीव	दौवारिकः	पिता

उ (बाएँ) द (दाएँ)

वा **प** **नै**

(2) <u>चतुः षष्टिपद वास्तु</u>– यद्यपि दोनों वास्तुपदों का पूजन क्रम वास्तुशास्त्रीय परम्परा में अनिवार्य बताये गये हैं। फिर भी 2 प्रकार की युक्ति वास्तुपुरुष की अवधारणा को और सुदृढ़ करती है। जैसा कि बताया गया है–

अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।
ब्रह्मा चुष्पदोऽस्मित्रर्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः।।
अष्टौ च बहिष्कोणेष्वर्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्धाः।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते हि।।

अर्थात् विकल्प से चौंसठ पद का क्षेत्र बनाना चाहिये (नव पूर्वापरा और नव दक्षिणोत्तरा रेखा खींचकर चौंसठ पद का क्षेत्र बनाना चाहिये)। फिर इसके चारो कोनों में कर्णाकार दो–दो रेखायें खींचने से यह क्षेत्र बन जाता है। इस क्षेत्र में चार पदों का स्वामी ब्रह्म और ब्रह्म के चारो कोनों में आठ देवता (आप, आपवत्स, सविता, सवित्र, इन्द्र, जयन्त राजयक्ष्मा और रुद्र) और बाहर के चारों कोनों में आठ देवता (शिखी, अन्तरिक्ष, अनिल अथवा अनल, मृग, पिता, पापयक्ष्मा, रोग और दिति)

अर्धपदीय हैं। इनके दोनों तरफ पर्जन्य, भृश, पूषा, भृंगराज, दौवारिक, शोष, नाग और अदिति सार्धपदीय (डेढ़ पद के स्वामी) हैं तथा शेष बीस देवता (जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, सुग्रीव, कुसुमदनत, वरुण, असुर, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर– ये बीस देवता) द्विपदीय हैं।

विशेष– यहाँ पर केवल चतुरस्र क्षेत्र में वास्तु नर का प्रदर्शन किया गया है; किन्तु वृत्त, त्रिकोण, षट्कोण आदि आकृति वाले भी गृह, ग्राम, नगर आदि देखे जाते हैं। अतः वृत्त, त्रिभुज आदि में किस प्रकार वास्तु नर का स्थापन करना चाहिये, इसको ग्रन्थान्तरों में इस प्रकार कहा गया है–

वृत्त में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन–क्रम– इक्यासी पद वाले वृत्तक्षेत्र में पाँच वृत्त बनाकर उनमें बाहर के दो वृत्तों में बत्तीस–बत्तीस पद, तीसरे में बारह पद, चौथे में चार पद और पाँचवें में केवल एक पद बनाना चाहिये। यहाँ मध्य के पाँच पद में ब्रह्मा, बाहर के दोनों वृत्तों में दो–दो पद वाले शिखी आदि बत्तीस देवता और अर्यमा आदि चार देवता तीन–तीन पदों में लिखे जायेंगे। इस प्रकार वृत्तक्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जाता है।

त्रिभुज में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन–क्रम– इक्यासी पद वाले त्रिभुजाकार वास्तु नर क्षेत्र में पाँच त्रिभुज बनाकरउसके प्रथम भाग में दोनों कोनों को छोड़कर पूर्व दिशा की भुजा का आठ भाग करे और अन्य दो भुजाओं के बारह–बारह भाग करे। तीनों कोनों में दिति, वायु और वरुण का स्थापन करे। फिर प्रथम भाग के शेष पदों में शिखी आदि देवताओं का स्थापन करे तथा इस भाग के तीनों कोनों पर भी प्रथम कोण–स्थित देवताओं का स्थापन करे और शेष पदों में वास्तुकोष्ठस्थित शेष देवताओं का स्थापन करे। तृतीय भाग में तीनों दिशाओं में चार–चार पद बनाकर उनमें प्रदक्षिणक्रम से अर्यमा, सवित्र, सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, जय, हर, राजयक्ष्मा, भूमिधर, आप और आपवत्स का स्थापन करे। चतुर्थ (मध्य) भाग के पाँच पदों में ब्रह्मा का स्थापन करे। इस प्रकार क्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जाता है।

वृत्त में चौंसठ पद वाले वास्तु नर का स्थापन–क्रम– चौंसठ पद वाले वृत्ताकार वास्तु नर क्षेत्र में समानान्तरचार वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त के बत्तीस, द्वितीय के सोलह, तृतीय के बारह और चतुर्थ के चार भाग बनानेके पश्चात् प्रथम वृत्त में शिखी आदि बत्तीस देवता एकपदीय द्वितीय वृत्त में अर्यमा आदि आठ देवता द्विपदीय, तृतीय वृत्त में आप आदि चार देवता त्रिपदीय और चतुर्थ वृत्त में ब्रह्माचतुष्पदीय स्थापन बनना चाहिए।

चतुः षष्टिपद के निर्माण प्रक्रिया को ऐसे समझा जा सकता है।

ई पू

आ

उ द

शिखी दिति	पर्जन्यः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्यः	भृशः	अन्तरिक्षः अनिलः
अदितिः	पर्यन्यः अदितिः	जयन्तः	इन्द्रः	सूर्यः	सत्य	भृशः पूषा	पूषा
भुजगः	भुजगः	आपवत्सः आपः	अर्यमा	अर्यमा	सविता सावित्रः	वितथः	वितथः
सोमः	सोमः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	बृहक्षतः	बृहक्षतः
भल्लाटः	भल्लाटः	पृथिवीधरः	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवश्वान्	यमः	यमः
मुख्यः	मुख्यः	रुद्रः राजयक्ष्मा	मित्रः	मित्रः	इन्द्रः जयः	गन्धर्वः	गन्धर्वः
नागः	नागः शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुदन्तः	सुग्रीवः	भृंगराजः दौवारिकः	भृंगराजः
रोगः प्रापयक्ष्मा	शोषः	असुरः	वरुणः	कुसुदन्तः	सुग्रीवः	दौवारिकः	मृगः पिता

वा प

नै

विशेष रुप से कुछ कर्मकाण्ड की प्रक्रिया में यह भी देखा जाता है कि शिलान्यास के समय पण्डितगण चतुः षष्टि पद का पूजन करते हैं तथा गृहप्रवेश के समय एकाशिति

पद वास्तु का अर्चन करते हैं। वस्तुतः दोनों का पूजन होना ही अभीष्ट है चाहे उसकी प्रविधि जिस प्रकार हो सके।

सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम्।
मर्माणि तानि विन्द्यात्र तानि परिपीडयेत् प्राज्ञः।।

पदों के ठीक–ठीक मध्य स्थान में वंशों (कोण से कोणगत सूत्रों) का परस्पर जो सम्पात हो, उसको 'मर्म स्थान' कहते हैं। बुद्धिमान् पुरुषों को उन मर्मस्थानों को पीड़ित नहीं करना चाहिये (यहाँ पर आचार्य ने वंश और रज्जु का विभाग–प्रदर्शन नहीं किया है; अतः उनका ज्ञान भट्टोत्पकृत विवृति में प्रदत्त विभाग–प्रदर्शक श्लोकों से करना चाहिये)।।57।।

2.4 विशेष–

आधुनिक युग में प्रायः समस्त विषयों को वैज्ञानिक ढंग से देखने एवं जानने की परम्परा बन गई है। ऐसी स्थिति में श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित वास्तुशास्त्रीय विमर्श में डॉ. राजीव कुमार मिश्र द्वारा प्रकाशित वास्तुपुरुष की अवधारण एवं वैज्ञानिकता के कुछ अंश आपके समक्ष रखता हूँ जिसको जानना आवश्यक है।

वास्तुशास्त्र की मान्यता है कि प्रत्येक वास्तु में वास्तुपुरुष का आवास होता है। वास्तुपुरुष की प्रसन्नता गृहस्वामी एवं उसके परिवार को सुख–शान्ति और समृद्धि से भरपूर रखती है। तथा उसकी अप्रसन्नता दुःख–क्लेश और विपत्तियों का कारक बनती है। (मत्स्यपुराण 252–15–19, बृहत्संहिता, वास्तु विद्याध्याय, 57–58)

यह वास्तुपुरुष ईशान कोण में शिर करके अधोमुख होकर स्थित है। (बृहत्संहिता, वास्तुविद्याध्याय, 51–54) इसके सिर में अग्नि, मुख में आप, स्तन में अर्यमा और छाती में आपवत्स स्थित हैं। बाह्य कोष्ठ स्थित पर्जन्यादि देवता नेत्र, कान, छाती और कन्धे में स्थित हैं। यथा– नेत्र में 'पर्जन्य, कान में जयन्त, छाती में इन्द्र और कन्धे में सूर्य स्थित हैं। तथा भुजा में सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, अनिल और पूषा पाँच देवता। हाथ में वितथ और बृहत्क्षत। पेट में विवस्वान, ऊरु में यम, जानु में गन्धर्व, जंघा में भृंगराज और कूल्हे में मृग स्थित है। ये सभी देवता दक्षिण अंग के

हैं।

इसी तरह वामपार्श्व में सब अंगों के देवता हैं। जैसे वामस्तन पर पृथ्वीधर, नेत्र में दिति, कान में अदिति, छाती में भुजंग, कन्धे में सोम, बाहु में भल्लाट, मुख्य, अहि, रोग पापयक्ष्मा, हाथ में रुद्र और राजयक्ष्मा, बगल में शोष और असुर, ऊरु में वरुण, जानु में कुसुमदन्त, जंघा में सुग्रीव तथा कूल्हे में दौवारिक स्थित हैं। लिंग में शक्र और जयन्त, हृदय में ब्रह्मा और पाँव में पिता स्थित हैं। (बृहत्संहिता, वास्तुविद्याध्याय, 51–54)

धर्मानुष्ठानों में स्थान और वास्तु से सम्बन्धित इसी देवता को ''ऊँ स्थान देवताभ्यो नमः'' ''ऊँ वास्तुदेवताभ्यो नमः'' कहकर अभिवादन किया जाता है। भवन–निर्माण के समय जो इस वास्तुदेवता को नहीं जागृत करते इसकी पूजा–अर्चना नहीं करते वहाँ वास्तुदेव का तिरस्कार होता है। फलतः उस भूमि–भवन में रहने वाले लोग सुखी नहीं रह पाते, कोई न कोई बाधा उपस्थित होती ही रहती है। इसके अतिरिक्त ऐसे भवनों में अशान्ति का एक अन्य कारण भी होता है। वह यह है कि जिस प्रकार मानवीय काया में अनेक मर्मस्थल होते हैं उन पर यदि भार लाद दिया जाय तो शरीर को कष्ट होने लगता है उसी प्रकार प्रत्येक छोटे बड़े भूखण्ड में लेटे तदनुरूप वास्तुपुरुष के बारह मर्मस्थल है।

समस्त नाडी संयोगे महामर्मानुजं हलम्।
त्रिशूलं स्वास्तिकं वज्रं महास्वास्तिकसम्पुटौ।। अग्पिुराण 93.7
त्रिकटं मणिबन्धं च सुविशुद्धं पदं तथा।
इति द्वादशमर्माणि वास्तोभित्त्यादिषु त्यजेत्।। अग्निपुराण 93.8

वर्तमान भौतिकवादी जगत् में भवन–निर्माण से पूर्व उपरोक्त विचारों से वास्तुकार (Architest) इसलिए बचते हैं, क्योंकि अज्ञानता के कारण वास्तुपुरुष की अवधारणा उनके गले नहीं उतरती। वे इसको एक रूढ़ि एवं अन्धमान्यता भर मानते हैं। इसमें सर्वाधिक दोष आज के विज्ञान का माना जा सकता है। क्योंकि उसने प्रत्येक उस तर्क को जिसकी बुद्धिसंगत व्याख्या असंभव थी अन्धविश्वास मान लिया। जहाँ मान्यता के प्रति दुराग्रह हो वहाँ सत्य का अन्वेषण कैसे हो सकता है? परिणाम यह

हुआ कि वर्तमान स्थापत्यशास्त्र ने संरचनाएं (अट्टालिकाएं) खड़ी करने के संबंध में दिशा, स्थान और वास्तु चेतना (पुरुष) की महत्ता को एकदम अस्वीकार कर दिया। यही कारण है कि अब सब कुछ सुविधानुसार ही विनिर्मित होते हैं, जबकि वास्तुशास्त्र ऐसा करने से स्पष्टतया निषेध करता है। उसमें शयन कक्ष, स्नानघर, पूजागृह, पाकशाला, दरवाजे, खिड़कियाँ इत्यादि सभी के लिए निर्धारित दिशा, संख्या और स्थान हैं। वास्तुशास्त्रकारों का ऐसा मत है कि वास्तुपुरुष के अनुरूप निर्माण न होने से उसमें निवास करने वाला व्यक्ति नाना प्रकार के व्याधियों एवं मानसिक अशांति का भाजक बन जाता है, अत एव वास्तुपुरुष के अंगों को पीड़ित नहीं किया जा चाहिए।

(क). गृहे मनुष्याणां शुभाशुभकरः स्मृतः।
तस्याङ्गानि गृहङ्गैश्च विद्वान् नैवोपपीडयेत्।। –मयमतम, 7.55

(ख) व्याधयस्तु यथा संख्यं भर्तुरङ्गे तु संश्रिताः।
तस्मात् परिहरेद् विद्वान् पुरुषाङ्गं तु सर्वदा।। –मयमतम्, 9.56

(ग) बृहत्संहिता, वास्तुपुरुषाध्याय, 57–58)

विष्णु धर्मोत्तरपुरण (विष्णु धर्मोत्तर पुराण, द्वितीय खण्ड, अ. 29, तृतीय खण्ड, 94–95) में भी इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

उपरोक्त वर्णन एक पक्ष हुआ अब दूसरे पक्ष पर विचार करें जो इसके (वास्तुपुरुष) के वैज्ञानिक पक्ष को प्रतिपादित करता है।

वास्तुशास्त्रकारों ने वास्तुपुरुष की सम्पूर्ण आकृति को वास्तुपुरुष मण्डल के रूप में भी प्रतिपादित किया है, जिसमें सभी देवता यथास्थान अवस्थित हैं। (अग्निपुराण, 93, 1–4, मत्स्यपुराण 253, 24–33, मानसार 7, 1–25, शिल्परत्न, पूर्वभाग, 6, 1–7, समराङ्गणसूत्रधार, 13.1, अपराजितपृच्छा 57, 1–3) वास्तुपुरुष मण्डल चूंकि जीवन में सौर ऊर्जा एवं भूचुम्बकीय ऊर्जा के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। वास्तुपुरुष मण्डल में स्थित देवताओं के नाम उनके साकारात्मक, नकारात्मक ऊर्जा के संगम पर आधारित हैं। प्राकृतिक ऊर्जा के दो श्रोत हैं सूर्य व चन्द्र। वास्तुपुरुष मण्डल में उत्तर में स्थित देवता साकारात्मक ऊर्जा एवं दक्षिण में स्थित देवता नकारात्मक ऊर्जा का प्रतिनिधितव करते हैं। सौर ऊर्जा को प्राणिक

ऊर्जा कहा जाता है, उत्तर–दक्षिण में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा जैविक ऊर्जा कहलाती है। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा के फलस्वरूप सौर ऊर्जा की दिशाएं बदलती रहती हैं, और वे एक दिशा में सतत प्रवाहमान उत्तर–दक्षिण की जैविक ऊर्जा को प्रभावित करती रहती हैं। एक ओर जहाँ सूर्य की गति के कारण, जो वस्तुतः पृथ्वी की गति है, प्राणिक ऊर्जा सतत् गतिशील एवं परिवर्तनशील रहती है वहीं जैविक ऊर्जा अर्थात् उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाली विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा सदैव एक ही दिशा में प्रवाहित होती है।

जब भी प्राणिक एवं जैविक ऊर्जा का सकारात्मक संयोग होता है तब स्वार्गिक आनन्दानुभूति होती है। भारतीय दर्शन परम्परा में इस संयोग को जीवन कहा गया है। पवन, सोम एवं ईश को उत्तरी क्षेत्र का अधिष्ठाता इसलिए कहा गया है क्योंकि दिन में सूर्य की गति पूर्व, पूर्व से दक्षिण–पूर्व, दक्षिण एवं दक्षिण से दक्षिण पश्चिम एवं अंत में पश्चिम तक होती है। पश्चिम में पहुँचते ही हम सूर्यास्त मान लेते हैं।

हमारे लिए पूर्व–पश्चिम सौर साम्राजय है तो पश्चिम–उत्तर पूर्ण साम्राज्य। अपनी नित्य की जिंदगी में हम सूर्य की निरन्तर परिवर्तित होती स्थिति के प्रभाव को अनुभव करते हैं। प्रातः पूर्व में सूर्योदय सबके लिए नूतन जीवन का सन्देश लेकर आता है, दो घण्टे तक यह पूण सर्वाधिक ऊर्जा प्रदान करता है। क्रमशः सूर्य की किरणें प्रखर होती जाती हैं। मध्याह्न में वह सर्वाधिक ऊर्जा निःसृत करता है। यह अग्नि की अवस्था मानी गयी है। अतः परिवर्तन के कारण मध्याह्न का सूर्य शरद में सुहावना एवं ग्रीष्म में कष्टदायी लगता है। मध्याह्न का सूर्य दक्षिण दिशा में होता है, अतः इसे यम की दिशा भी माना गया है। ज्यों–ज्यों सूर्य ढलता है, वातावरण में एक विषाद की सृष्टि होती है। इस समय सूर्य दक्षिण–पश्चिम दिशा में होता है यह आलस्य भरा समय होता है।

पश्चिम में सूर्यास्त सभी गतिविधियों को क्षणिक विराम दे देता है। अर्थात् दक्षिण–पूर्व क्षेत्र में सौर ऊर्जा अपनी पूरी तीव्रता से होती है। ये वे क्षेत्र हैं जहाँ सौर ऊर्जा प्राकृतिक भूचुंबकीय प्रवाह के सर्वथा विरुद्ध दिशा में होती है। इन क्षेत्रों में उनका नकारात्मक संबंध है। जब भी सौर ऊर्जा एवं जैविक ऊर्जा में नकारात्मक

सम्बन्ध होता है तो जीव प्राण रहित माना जाता है, एवं जीवन में तरह–तरह के कष्टों एवं व्यथाओं का अनुभव होता है। इसलिए इन क्षेत्रों के अधिष्ठाता देवता अग्नि एवं यम को माना जाता है। प्रवाह को काट सकता है। ये सभी क्षेत्र वास्तुपुरुष के मर्मस्थल हैं, इनमें कोई भी अवरोध रोगकारक होता है। मर्मस्थल में अवरोध संघर्ष को जन्म देता है तथा ऊर्जा प्रवाहों में अवरोध दुर्भाग्य की ओर ले जाता है। (समराङ्गणसूत्रधार, 13, 1–23, मयमतम, 7.55–56, बृहत्संहिता, वास्तुविद्याध्याय, 57–58)

अब यहाँ एक छोटा सा प्रश्न उठ सकता है कि जब सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए ब्रह्मजी ने एक ही बृहदाकार वास्तुपुरुष की सृष्टि की तो फिर अलग–अलग स्थानों के पृथक्–पृथक् वास्तुदेव कैसे हो गए। यह सर्वविदित है कि एक बड़े चुम्बक में अगणित छोटी और स्वतन्त्र चुम्बकीय इकाइयों की अवधारणा है। यह पृथक्–पृथक् उसी प्रकार से कार्य करते हैं जैसे एक बड़ा चुम्बक। शरीर में भी कितनी कोशिकाएं होती हैं, सभी के अपने कार्य हैं। यह समस्त इकाइयां मिलकर एक काया का निर्माण करती हैं। जीवविज्ञानियों के अनुसार शरीर की प्रत्येक कोशिका में एक पूर्ण मनुष्य छिपा है। आज इसी सिद्धान्त पर क्लोनिंग प्रक्रिया चलती है। ठीक इसी प्रकार वास्तुपुरुष की भी संरचना छोटी–छोटी इकाइयों से हुई है। यह वास्तु इकाइयां प्रत्येक छोटे–बड़े भूखण्ड के अनुरूप छोटी–बड़ी वास्तु सत्ताओं का निर्माण और उस भू–भाग का स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व करती हैं।

आत्मा परमात्मा का अंशधर है। उसी का प्रकाश उसमें समाया हुआ है, जब वह प्रकाश सम्पूर्णरूप में अभिव्यक्ति पाता है, तो फिर परमात्मचेतना और मानवीय चेतना में कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसलिए सूक्ष्म जगत् में आकार का कोई महत्त्व नहीं वह केवल और केवल भौतिक जगत् में ही उत्तर–पूर्व को एकीकृत ऊर्जा का उद्गम माना जाता है। इसके ठीक विपरीत दक्षिण–पश्चिम क्षेत्र समस्त ऊर्जा का अवसान क्षेत्र कहा जाता है। चूँकि पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश) ही वास्तु का आधार है। ये पंचमहाभूत पृथक्–पृथक रूप से अपनी–अपनी ऊर्जा का मूल वास्तु को प्रदान करते हैं। इन समस्त ऊर्जाओं के सम्मिलित मूल्यों से ही वास्तुपुरुष की स्थिति के मूल्य प्राप्त होते हैं। यह सर्वविदित है कि सौर ऊजा का समस्त

चराचर जगत् पर गहरा प्रभाव पड़ता है, भवन भी उससे अछूता नहीं रह सकता।

सूर्य की स्थिति के कारण भवन का एक भाग जहाँ सूर्य की किरणों से आलोकित होगा वहीं उसका दूसरा भाग छायामय होगा। यह भी सर्वविदित है कि चार मुख्य एवं छः विदिशाएं हैं, इनमें से पूर्व एवं उत्तर दिशा क्रमशः प्राणिक एवं जैविक ऊर्जा का स्रोत है जबकि पश्चिम एवं दक्षिण ऊर्जा का अवसान क्षेत्र है। चूँकि उत्तर–पूर्व जैविक एवं प्राणिक ऊर्जा दोनों का ग्रहण करता है। इसलिए इसको इतना महत्व दिया गया है। अतएव इस दिशा में कम से कम या बिलकुल भार न रखने का और खाली स्थान छोड़ने का परामर्श दिया जाता है। इसके विपरीत दक्षिण–पश्चिम अवसान क्षेत्र हैं, इसलिए इस दिशा में यथासंभव भारी सामान एवं कम से कम खाली स्थान छोड़ने का विधान है।

इसी प्रकार दक्षिण–पूर्व यदि अवसान+स्रोत क्षेत्र है तो उत्तर–पश्चिम स्रोत अवसान क्षेत्र है। ये विदिशाएं मर्मस्थान कहलाती हैं अतः इन दिशाओं में खिड़की इत्यादि बनाने का स्थान है। उन्हें सर्वाधिक महत्त्व का क्षेत्र माना गया है, क्योंकि इनमें कोई भी प्रवाह दोनों ऊर्जाओं को प्रभावित करता है। विदिशा में कोई दोष ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के नाप तौल में सहायक है। भारतीय संस्कृति में तो कण–कण में ईश्वरीय चेतना की विद्यमानता स्वीकारी गई है। (ईशावास्यामिदम् सर्व यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत्। ईशावास्योपनिषद्, 1 यजुर्वेद, 40)

यदि यह सत्ता सर्वव्यापी है एवं कण–कण में व्याप्त है तो नाम चाहे 'वास्तुदेवता', स्थानदेवता, ग्राम देवता या तीर्थदेवता कुछ भी दे दें, वे सभी उस परमसत्ता के ही द्योतक हैं। इन्हें गुणबोधक नामान्तर कहना ही उचित होगा। जब वह भवन और उनके निवासियों का संरक्षण कार्य संभालता है तो वास्तु देवता, किसी स्थान से सम्बद्ध होता है तो स्थान देवता, ग्राम की सुरक्षा का भार संभालता है तो ग्राम देवता एवं व्यैक्तिक समृद्धि का निमित्त बनने पर इष्ट देवता कहलाता है।

अतः इतना स्पष्ट हो जाने के पश्चात् विज्ञजनों को वास्तुपुरुष की वैज्ञानिकता एवं सत्ता स्वीकार करने में कोई उहा–पोह नहीं करनी चाहिए क्योंकि वास्तुपुरुष की मूल मान्यता में भी उस परमसत्ता की ही आभा और ऊर्जा नामान्तर भेद से क्रियाशील है। हमें उसकी सत्ता और महत्ता को स्वीकार करते हुए वास्तुपुरुषानुरूप भवननिर्माण

करना चाहिए। तभी भवननिर्माण सम्बन्धी त्रुटियों के प्रभाव से छुटकारा मिल सकता है तथा प्राकृ ऊर्जाओं का समुचित लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

2.5 सारांश–

(क) इस इकाई के परिज्ञान के द्वारा वास्तुपुरुष के सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों महत्व का ज्ञान हो रहा है।

(ख) वास्तुपुरुष वास्तुशास्त्र में उस प्रकार की परिकल्पना से अङ्गीकृत किया गया है जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में कालपुरुष।

(ग) वास्तुपुरुष की परिकल्पना के पीछे आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्य परिलक्षित होते हैं।

(घ) वास्तुपुरुष की उत्पत्ति पुराणों के कथानकों से वास्तु से संगृहीत है परन्तु वैदिक वास्तोस्पते प्रतिमान––इत्यादि मन्त्र द्वारा वास्तुदेवता की प्रतिष्ठा वैदिक कालीन प्राप्त होती है।

(ङ) भूमि पर किसी प्रकार के निर्माणादि से सम्बन्धित कार्य में वास्तुपुरुष के पूजन की परम्परा अतीव प्राचीन है।

(च) दो प्रकार के वास्तुपुरुष के स्वरुप में वास्तुपद अतीव महत्वपूर्ण है। इसकी आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिकता की चर्चा इस पाठ में विस्तृत रुप में की गई है।

(छ) वास्तुपुरुष के स्वरुप परिज्ञान से मानचित्र निर्माण एवं पंचमहाभौतिक स्थिति में संतुलन स्थापित करने में मदद मिलती है।

2.6 अभ्यास प्रश्न–

(1) वास्तु पुरुष कौन है?

(क) सूर्य (ख) वास्तुदेवता (ग) सविता (घ) इन्द्र

(2) वास्तुपुरुष के स्वरुप हैं?

(क) 4 (ख) 3 (ग) 2 (घ) 1

(3) एकाशितिपद में देवता कितने होते हैं?

(क) 45 (ख) 50 (ग) 40 (घ) 42

(4) वास्तुपुरुष का मुख होता है?

(क) पूर्व (ख) ईशान (ग) दक्षिण (घ) अग्निकोण

(5) वास्तुपुरुष की उत्पत्ति कहाँ हुई?

(क) जंगल में (ख) युद्ध में (ग) जल में (घ) कहीं नहीं

(6) चतु:षष्ठि पद का सम्बन्ध है?

(क) ज्योतिष से (ख) हस्तरेखा से (ग) वास्तु से (घ) सिद्धान्त से

(7) वास्तुपुरुष का पैर है?

(क) अग्निकोण में (ख) वायव्य कोण में (ग) नैऋत्य कोण में (घ) ईशान में

(8) वास्तुपुरुष का पूजन होता है?

(क) द्वार पर (ख) ईशान में (ग) अग्नि में (घ) कहीं नहीं

(9) अपराजितपृच्छा' का सम्बन्ध है?

(क) संहिता से (ख) वास्तु से (ग) सिद्धान्त से (घ) फलित से

(10) वास्तुपुरुष कैसे जमीन पर है?

(क) नीचे मुख करके (ख) ऊपर मुख करके (ग) बाँये करवट से (घ) दाँये करवट करके

प्रश्न	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
उत्तर	ख	ग	क	ख	ख	ग	ग	ग	ख	क

2.7 सन्दर्भ एवं सहायक पाठ्य ग्रन्थ –

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	लेखक / सम्पादक
1.	वास्तुरत्नाकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	विन्ध्येश्वरी प्रसाद
2.	राजवल्लभमण्नम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	शैलजा पाण्डेय
3.	वास्तुमण्डनम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,	श्रीकृष्ण जुगनू

		वाराणसी	
4.	वास्तु सौख्यम्	सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी	पं. कमलाकान्त शुक्ल
5.	बृहद्दैवज्ञरंजन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी
6.	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7.	वास्तुप्रबंध	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	प्रो. राजमोहन उपाध्याय

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वास्तुपुरुष की परिकल्पना के आधार को लिखें?
2. वास्तुपुरुष के स्वरुप का वर्णन करें?
3. वास्तुशास्त्र के वास्तुपद के महत्व को लिखें?
4. वास्तुपुरुष के अवधारणा की वैज्ञानिकता को लिखें?

इकाई - 3 भूशोधन प्रकार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूशोधन परिचय

3.3.1 भूशोधन के उपकरण

3.4 भूशोधन विधि एवं भेद

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक पदावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

ज्योतिष शास्त्र की ही परम्परा से अनुप्रणीत वास्तुशास्त्र का इतिहास भी विविध दृष्टियों से आज भी पूर्णतया वैज्ञानिक लगता है। हमारे पूर्वज महर्षियों के अचूक एवं प्रयोग मूलक इसी दृष्टि का प्रतिफल है कि एक गृहनिर्माण हेतु इतने व्यापक विचार की आवश्यकता पड़ती है। निर्माण कार्य सम्बन्धित समस्त विचारों को आचार्य परम्परा ने वास्तुशास्त्र में संग्रहीत करके विश्व को एक नई दिशा प्रदान की। आज भी आधुनिक निर्माण शास्त्र में (Civil Engineering) में वास्तुशास्त्रोक्त सभी विषयों का संग्रह है नहीं तो यदि किसी विषय की चर्चा नहीं है तो उसमें निहित मूलतत्व की परिचर्चा आवश्यक रुप से की गई है। वस्तुतः समय सापेक्ष या कहें सामयिक विशेषताओं का ध्यान भी रखा गया है वास्तुशास्त्र में जिससे धार्मिकता एवं पर्यावरण की रक्षा भी होती है। व्यापक दृष्टि मूलक यह शास्त्र आज भी अधिभौतिक सुखों के साथ आधिदैविक एवं आध्यात्मिक सुखों का साधन भी दिखता है। गृह के द्वारा केवल दो मंजिला या चार मंजिला सजावट एवं बनावट से परिपूर्ण घर की परिकल्पना मात्र चाक्षुष गुणों की पूर्ति करता है। जबकि घर पारिवारिक गुण–धर्म विशेष एवं व्यक्तित्व को प्रदर्शित कर नूतन उदाहरण के रूप में अपनी विशिष्टता प्रदर्शित करता है। ग्राम्य परिवेश में रहने वाले जानते हैं कि आज भी प्रत्येक ग्राम में कुछ घर ऐसे हैं जिनका बड़का घर या बड़ा घर की संज्ञा दी जाती है। ऐसी स्थिति में घर पद से समस्त उस परिवार के वैभव एवं संस्कार परिलक्षित होते हैं। उक्त वैभव एवं सत्संस्कारों के आधान में उत्तम साधन भूत गृह भी गृही के लिए अतीव महत्वपूर्ण कल्पित किया गया है।

3.2 उद्देश्य–

I. इस पाठ के अध्ययन से भूमि के अन्दर निहित गुणों के परिक्षण में दक्षता प्राप्त होगी।
II. भूमि के अन्दर निहित दोषों को भी जानकर संशोधन में प्रवीणता आयेगी।
III. विविध प्रकार के शोधन विधि के परिज्ञान में दक्षता मिलेगी।

IV. भूशोधन के प्रक्रिया का जानने तथा प्रायोगिक चित्र के सहायता से अभिज्ञान में निपुणता आयेगी।

V. मानव की राशि एवं नाम मात्र से भूमि के अन्तः निहित वस्तुओं के परिज्ञान के समन्वय में कुशलता प्राप्त होगी।

VI. भूशोधन की विविध प्रकार की दृष्टियों एवं प्रक्रिया ज्ञान में दक्षता प्राप्त होगी।

3.3 भूशोधन परिचय–

भूमि शोधन गृह निर्माण में परमावश्यक माना गया है। आचार्यों ने अपनी–अपनी परम्परा व शोध के अनुभव के आधार पर यह वर्णित किया है। यदि मुख्य रुप से शास्त्र में निहित तथ्यों का विचार करे तो प्राप्त होता है कि वास्तुशास्त्रीय परम्परा में गृह के 2 ही प्रमुख विभाग हैं।

(क) भूमि

(ख) गृह का स्वरुपादि

सबसे पहले हमें भूमि का विचार करना पड़ता है जिससे मानचित्र के आधार पर गृहनिर्माण में सहायता प्राप्त होती है। भूमि के शोधन के अनन्तर ही हम निर्णय कर पाते हैं कि यहाँ नीव, जल, वायु, स्थिरता आदि किस प्रकार व्यवस्थित किये जा सकते हैं। यही कारण है कि वास्तु विचार के प्रारम्भ में भूमि के शोधन की चर्चा है। यदि भूमि सभी प्रकार के शोधन रीति से अशुभ प्राप्त होती है तो हम स्थान बदलकर भूमि के गुण दोषों के आधार पर चयन तथा गृह का निर्माण करते हैं। भूमि के शोधन हेतु जिस स्थल पर वास्तु के विषयों की परिचर्चा है, वहाँ इससे पूर्व दिग्शोधन की बात की गई है। क्योंकि कहा गया है कि–

''प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः।
दिङ्मुढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संशोधनयेद्दिशम्।।''

–बृहद्दैवज्ञरञ्जन 83.214

अर्थात् प्रासाद, मकान, आलिन्द, द्वार एवं कुण्ड के निर्माण से पूर्व दिक् ज्ञान अवश्य करनी चाहिए। अन्यथा दिक् की अज्ञानता से कुल का नाश होता है। इस प्रकार दिक् शोधन करके फिर हमें भूमि शोधन की प्रक्रिया अपनानी चाहिए।

3.3.1 भूशोधन के उपकरण–

भूशोधन के लिए वास्तु शास्त्रीय ग्रन्थों में एक परम्परा प्रदान की गई है। उसके आधार पर ही हमलोग सबसे पहले शोधन हेतु आवश्यक उपकरणों को संग्रहित करते हैं तथा उनकी सहायता से भूशोधन करते हैं।

(1) भूमि– यह मूल रुप से साध्य है। जिसका क्षेत्र विस्तृत एवं विकल्प युक्त हो और साफ सफाई किया गया हो जिससे हम भूमि के अन्दर खात बनाकर उसका सम्यक् प्रकार से निरीक्षण कर सकें। इस भूमि का एक माप भी सुनिश्चित हो जिसमें बनने वाले गृहादि का माप के द्वारा सम्यक् गणितीय कार्यों को सम्पन्न कर सकें।

(2) भू स्वामी/गृह स्वामी– भूशोधन हेतु गृह स्वामी/भूस्वामी का होना परमावश्यक है। दैवज्ञ एवं कर्मकार भूस्वामी के मनः स्थिति के अनुरुप भूखण्ड का चयन करते हैं तथा उसको द्वारा निर्देशित दिशा–निर्देशों के अनुरुप विचार करने हेतु स्वामी को भूखण्ड पर साथ–साथ रखते हैं, जिसमें तत्काल समस्त स्थितियों पर गंभीरता के साथ विचार–विमर्श किया जा सके।

(3) सूत्र– प्राचीन काल में सूत्र/रज्जू/रस्सी (समानार्थाक) का ही प्रयोग मापने में किया जाता था जिसकी निर्माण की एक परम्परा प्राप्त होती है। 'विश्वकर्म प्रकाश' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि–

विप्रस्य दर्भजं सूत्रं मौजं तु क्षत्रियस्य च।
कार्पासं च भवेद्वैश्यं शूद्रस्य स्वर्णकल्पितम्।।

अर्थात्

विप्र के लिए – कुशा का सूत्र
क्षत्रिय के लिए – मुंज का सूत्र
वैश्य के लिए – कपास का सूत्र
शूद्र के लिए – सोने का सूत्र

सूत्र के परिमाप हेतु कहा गया है कि

"द्विध्नायामितं द्विपाशमजरत्सूत्रं विधायांक्रमे"

अर्थात् जिस सूत्र को आप मापने हेतु प्रयोग कर रहे हैं वह मजबूत एवं घर की दूनी लम्बाई का हो।

आज इस सूत्र के स्थान पर फीट, इंच आदि का व्यवहार होता है जिसमें शुद्धि एवं निष्ठा का अभाव होता है। हम जमीन का वैश्विक मापन प्रक्रिया से सरलता से मापन तो कर लेते हैं परं उनके प्रति आत्मीय नहीं हो पाते हैं केवल भौतिक उपयोग के द्वारा ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

(4) दैवज्ञ– समस्त प्रकार के वास्तुविधाओं का जानकार एवं कुशल तथा वेदनिष्ठ एवं स्वधत्रय ज्योतिष का ज्ञाता दैवज्ञ या वास्तुशास्त्र का विद्वान् परमावश्यक है जिसके निर्देशन में यह समस्त कार्य संचालित किया जाय।

(5) कर्मकार/मजदूर– भूशोधन की विविध प्रक्रियाओं के प्रयोग में कर्मकार की आवश्यकता होगी, जिससे भूमि के खनन आदि कार्यों का सम्पादन हो सके। वह कर्मकार अपने यन्त्रों के साथ आता है, जिससे कार्य करना आसान हो जाता है। उसके पास खननादि हेतु यन्त्रों के अतिरिक्त चिह्न लगाने हेतु चूना आदि एवं शंकु (बाँस की खूटी) आवश्यक होता है।

3.4 भूशोधन विधि एवं भेद

भूशोधन हेतु 3 प्रकर की विधि प्रमुख रुप से प्राप्त होती है। इनके द्वारा भूमि का संशोधन किया जाता है।

(क) जीवित/मृत परिज्ञान विधि– यहाँ वास्तुशास्त्र में सामान्य एवं गणितीय दृष्टि से भूमि के जीवित एवं मृत का ज्ञान बताया गया है। यहाँ जीवित पद से उर्वरा शक्ति सम्पन्न एवं मृत पद से उसर वा उर्वरा विहीन समझना चाहिए।

वास्तुरत्नाकर में बताया गया है कि–

यत्र वृक्षाः प्ररोहन्ति शस्यं सम्यक् प्रवर्द्धते।
सा भूमिर्जीविता ज्ञेया मृता वाच्याऽन्यथा बुधैः।।

–वास्तुरत्नाकर 1.63

अर्थात् जहाँ सभी प्रकार के वृक्ष, घास आदि अच्छी तरह बढ़ते हों उस भूमि को जीवित तथा उसके विपरित को मृत भूमि जानना चाहिए।

दूसरे प्रकरण में एक सामान्य गणित के द्वारा इसका साधन बताते हैं कि–

भूम्यक्षरं चतुर्गुण्यं तिथिवारैश्च मिश्रितम्।
त्रिभिर्भागः प्रदातव्यः शेषेण फलमादिशेत्।।

—तत्रैव 1.64

एकेन जीविता भूमिः द्विशेषे भूः समा भवेत्।

त्रिशेषे च मृता भूमिरित्युक्तं चादियामले।।

अर्थात् भूमि के नामाक्षर की संख्या को 4 से गुणा कर तिथि एवं वार की संख्या जोड़ने पर 3 का भाग दें। यदि

1 शेष हो तो जीवित भूमि

2 शेष हो तो सम

3/0 शेष हो तो मृत भूमि

अन्य प्रक्रिया बताते हैं कि–

व्योमविस्तारयोरैक्यं ग्रामाक्षरसमन्वितम्।

चतुर्गुणं नामयुक्तं शिवनेत्रेण भाजितम्।

एकेन जीविता भूमिर्द्वाभ्यां च समता भवेत्।

शून्यशेषे तु शून्यं स्यादित्युक्तं रुद्रयामले।।

—वास्तुरत्नाकर 1.66–67

अर्थात् भूमि की लम्बाई एवं चौड़ाई के योग में ग्राम के अक्षर को जोड़कर 4 से गुणा कर उसमें निवास कर्ता के नामाक्षर को जोड़कर 3 का भाग देने पर शेष यदि

1 हो तो जीवित

2 हो तो समता

0 हो तो मृत

इस प्रकार एक अन्य विशिष्ट शोधनार्थ श्लोक प्राप्त होता है कि

स्फुटिता च सशल्या च वाल्मीकिऽऽरोहिणी तथा।

दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुधनापहा।।

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।

सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी।।

अर्थात् जो भूमि फटी, हड्डी वाली, दीमक वाली वो ऊँची–नीची (बहुत) हो उसका त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि इससे कर्ता एवं धन की हानि होती है।

फल

फटी भूमि	मरणप्रद
उसर भूमि	धननाश
शल्ययुक्ता	क्लेशदा
उँची–नीची	शत्रु वर्धिनी

(ख) सूत्र एवं शंकु से शोधन विधि– यहाँ भूमि को सत्र के द्वारा एवं शंकु रोपणादि द्वारा शोधन प्रक्रिया बताई गई है जैसे–

षड्वर्गशुद्धसूत्रेण सूत्रिते धरणीतले।
सूत्रिते समये तस्मिन् सूत्र केनापि लंघितम्।।
तदास्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः।
अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशि शल्यं समादिशेत्।।
तस्यामेव तदस्थीनि सप्तव्यंगुलमानतः।
सूत्रिते समये यत्र श्वा सद्मोपरि संस्थितः।।
तदस्थि तत्र जानीयात्पष्ठ्यंगुलमितक्षितौ।
उन्मादे चागते तस्मिन्समये यत्र संस्थिते।।
तदस्थि तत्र जानीयाद्धस्तद्वयमिते क्षितौ।
चाण्डाले जटिले वापि तदा तस्यां दिशि स्थिते।।
तदस्थि तत्र जानीयादशीत्यंगुलमानतः।
नृगजाश्वपशूनां हि त्वेकस्मिन् यत्र संस्थितम्।।
तदस्थि तत्र जानीयात्षष्ठ्यंगुलमितक्षितौ।
तस्मिन्नवसरे यत्र गृहदाहो भवेद्यदि।
मेषास्थि तत्र जानीयात्पुरुषाष्टप्रमाणतः।।
सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुम्भेथवा यदि।
आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि षडवर्ग शुद्धि सूत्र से भूमि का नाप करना और नापने के समय यदि इसका कोई भी लंघन कर दे तो वहाँ पर एक पुरुष प्रमाण नीचे हड्डी समझना तथा नापते समय जिस दिशा में उबटना दीखे तो उस दिशा में सत्तर अंगुल प्रमाण से हड्डी समझना। अथवा उस समय सूत्र के ऊपर यदि कुत्ता (स्वान) आ जाय तो वहाँ पर 60 अंगुल पर हड्डी जानना, यदि कोई उस समय पागल मनुष्य आ जाय तो दो दो हाथ नीचे उस स्थान पर हड्डी, या चाण्डाल या जटिल आ जाय तो उस स्थान पर 80 अस्सी अंगुल नीचे हड्डी, या मनुष्य–हाथी–पशु एकत्रित जिस स्थान पर हों वहाँ 60 अंगुल पर हड्डी, यदि नापते समय घर का जलना जहाँ दिखे तो वहाँ पर 8 आठ पुरुष नीचे बकरे की हड्डी होती है। यदि नाप के समय सूत्र टूट जाय या घड़ा फूट जाय तो क्रम से दम्पती का मरण होगा, ऐसा आदेश देना चाहिए।

सूत्र का शुभाशुभ–

चतुष्कोणोद्धृतं सूत्रं पश्चात्फलं निरीक्षयेत्।
समे शुभं फलं प्रोक्तमधिके अशुभप्रदम्।।

चारों कोणों में सूत्र बाँधकर फल का निर्णय करना चाहिये। जैसे चारों कोणों में समान होने पर शुभ फल और अधिक होने पर अशुभ फल होता है।

अग्न्याधिक्ये भवेद्रोगं नैर्ऋते भयदायकम्।
वायव्ये क्षयहेतुश्च ईशाने निर्जनं भवेत्।।

यदि अग्नि कोण में अधिक हो तो रोग, नैऋत्य में भय, वायव्य में क्षय और ईशान कोण में अधिक हो तो मकान में मनुष्यों का अभाव होता है।

(ग) भूशोधनार्थ शल्योद्धार विधि–

भूमि शुद्धि के लिये हड्डी का ज्ञान– यहाँ भूमि के अन्तर्गत स्थित शल्य के परिज्ञान की विधि बताई गई है। यह अतीव प्राचीन परम्परा है प्रयोगनिष्ठ एवं साधक के द्वारा आसानी से इससे अस्थि का ज्ञान किया जा सकता है जैसे–

ज्योतिर्निबन्धे–

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम्।

गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते।।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि अपने इष्ट देवता का स्मरण करके प्रश्न के आदि अक्षर को जानकर शल्य (हड्डी) है या नहीं इसका विचार करना चाहिये।

अकचटतपयशषयावर्णाः पूर्वादिवर्णान्ताः।

शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे विवसतां नाशः।।

प्रश्नकर्ता के मुख से अ, क, च, ट, त आदि वर्ग का जो अक्षर प्रथम उच्चरित हो वही पूर्व दिशा से प्रारम्भ करे मध्यपर्यन्त शल्य ज्ञान करने वाले होते हैं।

पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्।

सार्द्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुष्यमृत्युकृत्।।

जैसे प्रश्नकर्ता प्रथम अवर्गादि का अक्षर कहे तो पूर्व दिशा में मनुष्य की हड्डी डेढ़ हाथ नीचे समझना, इससे मनुष्य की मृत्यु होती है।

आग्नेय्यां यदि कः प्रश्ने शशशल्यं करद्वये।

राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते।।

यदि क वर्ग का अक्षर प्रथम मुख से निकले तो अग्निकोण में दो हाथ नीचे शशक (स्यार) या पाठान्तर से खर (गधा) की हड्डी समझना इसमें राजकीय दण्ड होता है और भय या दूरी करण नहीं होता है।।

प्रश्नाक्षर च वर्ग का फल–

याम्यायां दिशि च प्रश्ने कुर्यादाकटि संस्थितम्।

नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगता।।

यदि प्रथम अक्षर च वर्ग का हो तो दक्षिण दिशा में मनुष्य की हड्डी कमर तुल्य नीचे होती है। इसमें घर के मालिक का मरण या अधिक समय तक रोग होता है।

प्रश्नाक्षर ट वर्ग का फल–

नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्द्धहस्तादधस्तले।

शुनोस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम्।।

जब ट वर्ग का प्रथम प्रश्नाक्षर होता है तो नैऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ नीचे कुत्ते की हड्डी होती है। इसमें रहने पर बालकों की मृत्यु होती है।

तवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते।

सार्द्धहस्तमिते तत्र स्वामिनं नेच्छति ध्रुवम्।

जब पहला प्रश्न का अक्षर तवर्ग का होता है तो पश्चिम दिशा में डेढ़ हाथ नीचे बालक की हड्डी होती है। इसमें मालिक का रहना निश्चय ही अच्छा नहीं होता है।

पवर्ग प्रश्नाक्षर का फल–

वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषांगाराश्चतुः करे।

कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनम् तथा।।

जब प्रश्न काल में पवर्ग का प्रथम अक्षर होता है तो वायव्य दिशा में चार हाथ नीचे भूसा, अंगार कोयला होता है। इसमें मित्र नाश व दूषित स्वप्नों का दर्शन होता है।

यवर्ग प्रश्नाक्षर का फल

उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्र शल्यं कटेरघः।

तद्गृहं निर्धनायत्वं कुबेरसदृशो यदि।।

जब प्रश्न काल में यवर्ग का आदि अक्षर होता है तो उत्तर दिशा में कमर से नीचे तक गर्त में ब्राह्मण की हड्डी होती है इसमें कुबेर के समान धनी पर भी निर्धनता होती है।

विशेष– प्रकाशित ज्योतिर्निर्बन्ध में 'तच्छ्रीघ्र' निर्धनत्वाय कुबेर सदृशस्य हि' पाठ है।

शवर्ग प्रश्नाक्षर का फल–

ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्द्धहस्ततः।

तद्गोधनानां नाशाय जायते गृहमेधिनाम्।

जब प्रश्न काल में शवर्ग का प्रथम अक्षर होता है तो डेढ़ हाथ नीचे गाय की हड्डी ईशान कोण में होती है। इसमें मकान मालिक के गोधन (पशु) का विनाश होता है।

हषया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः।

नृकपालमथो भस्म लौहं तत्कुलनाशकृत्।।

और ह ष य मध्यम कोष्ठ में होने पर छाती पर्यन्त नीचे मनुष्य खोपड़ी, राख, लोहा होता है। इसमें स्वामी के कुल का विनाश होता है।
(भूमि को 9 भाग में विभाजित कर जानें, जैसे)

वर्ण	दिक्	स्थिति	प्रमाण	फल
अ	पूर्व	मानव अस्थि	1.5 हाथ नीचे	मृत्यु
क	अग्निकोण	शशक अस्थि	2 हाथ नीचे	राजदण्ड
च	दक्षिण	मानव अस्थि	कटि तुल्य	भर्तृ मरण
ट	नैऋत्यकोण	कुता की अस्थि	1.5 हाथ नीचे	बालक मृत्यु
त	पश्चिम	बालक की अस्थि	1.5 हाथ	कर्तु हानि
प	वायव्य	भूसा, राख	4 हाथ	मित्रनाश
य	उत्तर	विप्र अस्थि	कटि पर्यन्त	निर्धनता
श	ईशानकोण	गाय की हड्डी	1.5 हाथ	गोधनहानि
ष, ह य	मध्य	खोपड़ी लोहा	छाती पर्यन्त नीचे	स्वामि का कुलनाश

<u>भिन्न रीति से शल्यज्ञान</u>–

ग्रन्थान्तरे–

गृहस्य पिण्डिका चैव कृत्वा च नवखण्डकान्।
तेषु तेषु च भागेषु पूर्वादिक्रमतो बुधैः।।243।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि घर के पिण्ड के 9 नव भाग करके पूर्वादि दिशा क्रम से उन भागों में व, क, च, त, ण, ह, स, य अक्षरों को लिखकर प्रश्नकर्ता से ब्राह्मणादि वर्ण से अर्थात् ब्राह्मण प्रश्न कर्ता हो तो किसी पुष्प का, क्षत्रिय से नदी का, वैश्य से देवता और शूद्र से फल का नाम कहलवाकर देखना जहाँ यह पुष्पादि अक्षर हो वहीं हड्डी और अन्य अक्षर में हड्डी नहीं होती है। उसमें आद्यक्षर व क चादि हों तो पूर्वादि दिशाओं में क्रम से इन अक्षरों से वक्ष्यमाण प्रकार से शल्य का ज्ञान करना चाहिये।

ऊँ धरणी विदारिणी भूत्यै स्वाहा' इति रक्षामन्त्रं

वारत्रय पठित्वा हस्तं पृथिव्यां धृत्वा व प्रश्ने पूर्वस्यांदिशि मनुजशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति। क प्रश्नेआग्नेय्यां खरशल्यंकटिमात्रे नृपदण्डं वा गोमरणं कथयति। च प्रश्ने दक्षिणस्यां वानशल्य कटिमात्रें गृहनाथस्त मृत्युं कथयति। त प्रश्ने नैर्ऋत्याम् अश्वशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे वित्तराज्यमृत्युभयम्। ण प्रश्ने वायव्यां पुरुषशल्यं दुःख स्वप्न प्रदर्शनं कथयति। स प्रश्ने कौबेर्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनं कथयति। प प्रश्ने ईशान्यां ऋक्षशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे गोधननाशं कथयति। य प्रश्ने नरकपालं भस्मशल्यं हृदिमात्रे कुलनाशनं कथयति। गृहे शल्यं नास्ति तदा शुभं स्यात्।

ऊँ धरणी विदारिणी' इत्यादि रक्षामंत्र का तीन बार पाठ करके गृह कर्ता से भूमि स्पर्श कराकर प्रश्न करना चाहिये।

जब 'व' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो पूर्व दिशा में डेढ़ हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी होती है इसमें निवास से मानव क्षति होती है।

जब 'क' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो अग्नि कोण में कमर से नीचे गधा की हड्डी होती है। इसमें राजकीय दंड या गाय का मरण होता है।

जब 'च' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो दक्षिण दिशा में कमर से नीचे बन्दर की हड्डी होती है। इसमें मकान मालिक का मरण होता है।

जब 'त' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो नैऋत्य दिशा में डेढ़ हाथ नीचे घोड़े की हड्डी होती है। इसमें धन का, राज्य का या मरण का भय होता है।

जब 'ण' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो वायव्य में मनुष्य की हड्डी दुःख देने वाली होती है।

जब 'स' आदि का प्रश्नाक्षर होता है तो उत्तर दिशा में कमर से नीचे ब्राह्मण की हड्डी निर्धनता देने वाली, 'य' में ईशान कोण में ऋक्ष (वानर) की हड्डी डेढ़ हाथ नीचे में गोधन नाश और 'य' आदि का प्रश्नाक्षर होने पर वक्षस्थल से नीचे मनुष्य की खोपड़ी, भस्म, हड्डी होती है। इसमें कुल का नाश होता है। घर पिण्ड में जब हड्डी का अभाव होता है तो शुभ होता है।।

3.5 सारांश–

I. इस पाठ से मुख्य रुप से भूमि के शोधन के समस्त पक्षों पर गंभीरता के साथ

विचार किया गया है।

II. भूमि गृहनिर्माण की प्राथमिक इकाई है जिसके उपर निर्मित गृह का समस्त शुभाशुभ फल निर्भर करता है।

III. भूशोधन के मुख्य रुप से 2 अंग प्राप्त होते हैं।
(क) बाह्य अंग (ख) अन्तरंग

IV. लोक प्रसिद्ध जीवित व मृत के सम्बन्ध का ज्ञान भी यहाँ स्थिति एवं गणितीय सूत्रों के आधार पर विस्तारपूर्वक बताया गया है।

V. सूत्र (मापन हेतु प्रयुक्त साधन) के द्वारा शकुन एवं लक्षणों के आधार पर भी विस्तृत रुप से चर्चा की गई है।

VI. शल्य (हड्डी) जानवरों या मनुष्य के अस्थि के जमीन में होने की संभावना को शोधित करने के लिए ज्योतिषीय वास्तु का विधान किया गया है जिसमें शल्य का परिज्ञान करके हम आसानी से उसे निकालकर शुद्ध भूमि पर गृहनिर्माण कर सकते हैं।

VII. भूमि के परिज्ञान की समस्त लौकिक एवं वैज्ञानिक विशेषताओं का वर्णन इस पाठ में किया गया है।

3.6 पारिभाषिक पद

शल्य	अस्थि या हड्डी (जो जमीन के नीचे दबे रहते हैं)
सूत्र	जिसके द्वारा मापन किया जाय।
जीवित	उर्वरा शक्ति सम्पन्न एवं उपजाउ
मृत्	उसर एवं उर्वरा विहीन

3.7 वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) जीवित भूमि का अर्थ है?

(क) उर्वरा रहित (ख) उर्वरा सहित (ग) उसर (घ) कोई नहीं

(2) फटी भूमि का फल है?

(क) शत्रुनाश (ख) मरणप्रद (ग) हानि (घ) चौर

(3) जिस भूमि पर पेड़–पौधे बढ़ें?

(क) उसर भूमि (ख) मृत भूमि (ग) जीवित भूमि (घ) कोई नहीं

(4) 'क' वर्णोच्चारण से शल्य है?

(क) अग्निकोण में (ख) पूर्व में (ग) उत्तर में (घ) दक्षिण में

(5) 'य' वर्णोच्चारण में किसका शल्य है?

(क) गाय का (ख) विप्र का (ग) गदहे का (घ) बालक का

(6) ' वर्णोच्चारण द्वारा कितने नीचे अस्थि है?

(क) 2 हाथ (ख) 1 1/2 हाथ (ग) 4 हाथ (घ) 5 हाथ

(7) 'प' वर्ण के उच्चारण से शल्य का फल है?

(क) मित्र नाश (ख) विप्रनाश (ग) शत्रुनाश (घ) स्त्रीनाश

(8) क्षत्रिय का सूत्र होता है?

(क) सोने का (ख) मुंज का (ग) कुशा का (घ) रुई का

प्रश्न	1	2	3	4	5	6	7	8
उत्तर	ख	ख		क	ख	ख	क	ख

3.8 सन्दर्भ एवं सहायक पाठ्य ग्रन्थ

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	लेखक/सम्पादक
1.	वास्तुरत्नाकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	विन्धेश्वरी प्रसाद
2.	राजलल्लभमण्नम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	शैलजा पाण्डेय
3.	वास्तुमण्डनम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	श्रीकृष्ण जुगनू

4.	वास्तु सौख्यम्	सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी	पं. कमलाकान्त शुक्ल
5.	बृहद्दैवज्ञरंजन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी
6.	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7.	वास्तुप्रबंध	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	प्रो. राजमोहन उपाध्याय

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

(क) शल्योद्धार शोधन प्रक्रिया लिखें?

(ख) भूमि शोधन के विधि का वर्णन करें?

(ग) भू–शोधन में सूत्र प्रयोग पर निबन्ध लिखें?

इकाई - 4 भू परीक्षण विधि

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

वास्तुशास्त्र की प्राचीनता की चर्चा हमारे प्राचीन वेदों में प्राप्त होती है। भवन की परिकल्पना एवं निवासार्थ गृह के विविध प्रविभागों की स्थिति का निदर्शन भी किया गया है। प्राथमिक स्तर पर गृह के लिए भूमि को विविध दृष्टियों से विचार किया गया है तथा निर्माण का मुख्याधार भूमि होने के कारण ही विषयदृष्टया अतीव व्यापक रुप में सभी वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तृत रुप से वर्णन भी किया गया है। भूमि को माता रुप में प्रतिष्ठित करने वाली हमारी संस्कृति भी पर्यावरण संरक्षण सहित इनके अनेक उपायों को प्रदर्शित करती है। भूमि के अत्यधिक दोहन तथा वृथा उपयोग को अस्वीकार करते हुए उसके दोष परिमार्जन के विविध उपायों की परिचर्चा भी की गई है। वास्तुशास्त्र में यही कारण है कि विकल्प तथा परिहारोपाय की परिकल्पना प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है। प्रत्येक आचार्यों की अपनी दृष्टि एवं प्रायोगिक अनुभव की एक विशेष परम्परा रही है जिसके सापेक्ष उनके ग्रन्थ हैं। प्रत्येक आचार्य अपनी परम्परा को मुख्य लक्ष्य मानकर उसकी गंभीरता को सहज एवं तल्लीन होकर प्रस्तुत करते हैं। भूमि को यद्यपि क्षमा का पर्याय भी कहा गया है परन्तु उसमें दोष या शुद्धि या शोधन की परिचर्चा भौतिक स्वरुप को प्रकट करता है न कि अधिदैविक या आध्यात्मिक दृष्टि भूमि के ऊपर निर्मित होने वाले विशालकाय गृह के लिए यह अतीव आवश्यक है कि उसके आधार का सर्वतो दृष्टया परीक्षण हो, जिससे निर्माण में अधिक खर्च न हो तथा हमारा गृह मजबूत एवं दीर्घायु हो।

4.2 उद्‌देश्य

इस पाठ के अध्ययन से निम्नलिखित उद्‌देश्यों की पूर्ति होती है–

I. भूमि परीक्षण की विधि के सम्यक् ज्ञान में दक्षता होगी।

II. भूमि के भौतिक स्वरुप के परिज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।

III. भूमि पर निर्मित होने वाले भवन के ऊँचाई एवं व्यापकता के मूलभूत नीव के निर्माण में निपुणता प्राप्त होगी।

IV. भूमि के न केवल बाह्य अपितु आन्तरिक गुणों के परिज्ञान का अवसर प्राप्त होगा।

V. आलेखपूर्वक प्रायोगिक चित्रण से विषयावगाहन में दक्षता प्राप्त होगी।

4.3 विषय

निर्माण सम्बन्धित कार्य के लिए भूपरीक्षण आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना भावि भवन की बहुत सारी स्थितियों की योजना नहीं की जा सकती। भवन का आधारभूत नींव को मजबूत बनाने के लिए मीट्टी का परीक्षण एवं उसमें निहित अन्य स्थितियों का परीक्षण अत्यावश्यक होता है। अतः इस पाठ के द्वारा हम भूमि के परीक्षण के तरीकों का विस्तृत रुप से अध्ययन करेंगे तथा दोषो के परिमार्जन सहित गुणों के अनुरुप भवन के मानचित्र के निर्माण में सहायता भी प्राप्त करेंगे। हम यदि भूमि परीक्षण के विधि का समग्रता के साथ अवलोकन करें तो पाते हैं कि भूमि परीक्षण के 2 विधि मुख्य रुप से हमारे प्राचीन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित हैं।

(क) बाह्य परीक्षण विधि

(ख) अन्तः परीक्षण विधि

4.3.1 बाह्य परीक्षण

विधि के अन्तर्गत वे समस्त नियम आते हैं जिनका सम्बन्ध भूमि के ऊपर से होता है। इसके अन्तर्गत चतुर्वर्ण के विधान से पृथक् पृथक् विचार किया गया है। यथा बृहत्संहिता में आचार्य ने बाह्य परीक्षण विधि को बताया है कि–

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च महीनराणाम्।
अव्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।

–बृहत्संहिता 51.86

अर्थात् जिस भूमि पर अच्छी औषधियों, पेड़ दिखे, वह भूमि मधुर, सुगन्धित चीकनी एवं समतल हो वह उसर न हो तथा जो थके हुए पथिक को आराम प्रदान करे वैसी भूमि पर यदि गृह बनाया जाय तो क्या बात है? अर्थात् वह भूमि उत्तम है। इसके अन्तर्गत भूमि की ढलान, गन्ध एवं प्लवत्व एवं वर्णादि के आधार पर विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही।

उत्तरप्रवणा ज्ञेया ब्राह्मणानां च सा शुभा।।
रक्तगन्धा कषाया च शरवीरेण संयुता।
रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणां च सा मही।।
दक्षिणप्रवणा भूमिर्याऽम्ला दूर्वाभिरन्विता।
अन्नगन्धा च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते।।
पश्चिमप्रवणा कृष्णा विकुण्ठा काशसंयुता।
मद्यगन्धा मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा।।

इनका अर्थ चक्र से स्पष्ट है।

ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	वर्ण
उत्तरप्लव	पूर्वप्लव	दक्षिणप्लव	पश्चिमप्लव	प्लव
मधुर	कषाय	अम्ल	कटु	रस
घृतगन्धा	रक्तगन्धा	अन्नगन्धा	मद्यगन्धा	गन्ध
दर्भयुक्ता	शरपतयुता	बूवयुक्ता	काशयुक्ता	स्थिति
श्वेतवर्णा	रक्तवर्णा	पीतवर्णा	कृष्णवर्णा	वर्ण

भूमिप्लवे विशेषः (बृहत्संहिता 52.89)–

उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव।
विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम्।।

उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम की ओर ढालू भूमि क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये शुभफल देनेवाली होती है। ब्राह्मण चारों ओर की ढालू भूमि पर गृह बना सकता है। और शेष वर्णों के लिये अपनी 2 दिशा की ओर ढालू पृथिवी पर ही घर बनवाना शुभदायक है।

अथवा

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनधान्यदा।
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत्।।

इसका अर्थ आलेख में सरल है।

उ. प्लव	पूर्वप्लव	दक्षिणप्लव	पश्चिम प्लव	प्लव
धनदा	बृद्धिकरी	मृतिदा	धान्यदा	फल

आठो दिशाओं में प्लवत्व का फल–

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभं च विद्यालाभं क्रमेण च।।
विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतः पुरा।।

पूर्व	अग्नि	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान	दिक्
श्री	दाह	मृत्यु	धन हानि	सुत् क्षय	प्रवास	धन लाभ	विद्या लाभ	फल

इन दोनों का अर्थ भी स्फुट है।

अन्यान्यपि लक्षणानि (ज्योतिर्नि.)–

दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके।
एभिरुच्चा भवेद् भूमिर्गजपृष्ठोऽभिधीयते।।
गजपृष्ठे भवेद्वासः सलक्ष्मीधनपूरितः।
आयुर्वृद्धिकरी नित्यं जायते नाऽत्र संशयः।।
मध्ये तूच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्।
कूर्मपृष्ठं विजानीयात्तत्र वासं समाचरेत्।।
कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः।
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम्।।
पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत्।

पश्चिमे च यदा नीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते।।
दैत्यपृष्ठे कृते वासे लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरम्।
धनपुत्रपशूनां च हानिरेव न संशयः।।
पूर्वपश्चिमयोर्दीर्घा दक्षिणोत्तर उच्चता।
नागपृष्ठं विजानीयात्कर्तुरुच्चाटनं भवेत्।।
नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे।।

दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण की ओर ऊँची भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं। गजपृष्ठ भूमि पर निवास करने से मनुष्य लक्ष्मी (धन) से पूरित रहता है और उसके आयुकी वृद्धि होती है। बीच में ऊँची और चारो ओर नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। कूर्मपृष्ठ भूमि पर वास करने से प्रतिदिन उत्साह की वृद्धि, सौख्य और धनधान्य का विपुल लाभ होता है। पूर्व, अग्नि, ईशान कोण में ऊँची और पश्चिम दिशा में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं। दैतयपृष्ठ पर बने हुए मकान में लक्ष्मी कभी नहीं आती और धन, पुत्र, पशु इत्यादि की हानि होती है। पूर्व पश्चिम को लम्बी और उत्तर दक्षिण ऊँची (एवं बीच में कुछ नीची) भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं। इस भूमि पर बास करने वाले का उच्चाटन, मृत्युभय, स्त्रीपुत्रादि की हानि, पद 2 पर शत्रुओं की वृद्धि होती है।

गजपृष्ठ	कूर्मपृष्ठ	दैत्यपृष्ठ	नागपृष्ठ	संज्ञा
दक्षिण–पश्चिम नैऋत्य ऊँचा हो	मध्य ऊँचा हो चारो दिक् नीचा	पूर्व–अग्नि–ईशान ऊँचा हो तो पश्चिम नीचा	पूर्व–पश्चिम लम्बा उत्तर–दक्षिण ऊचा हो	स्थिति
धनलाभ, आयुवृद्धि	उत्साह, सुख, धन–सम्पत्ति लाभ	धन, पुत्र एवं पशु हानि	मृत्यु, पुत्र–धन–हानि शत्रु वृद्धि	फल

4.4 अन्तः परीक्षण

अन्तः परीक्षण विधि का अर्थ है भूमि के अन्दर निहित तथ्यों के विविध प्रकार से परीक्षण करना तथा उसके शुभाशुभ स्थिति के आधार पर भूमि का वर्णन किया गया है। इसके भी उपभेद बहुत हैं–

(क) भूमि के खनन से उत्पन्न मिट्टी द्वारा परीक्षण–

गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम्।
यद्यूनमनिष्टं तत् समे समं धन्वमधिकं यत्।।

गृहकर्ता के हाथ से गृहमध्य में एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्डा खोदकर पुनः उस गड्डे को उसी मिट्टी से भरे, यदि गड्डे को भरने में गड्डे से ही निकाली गई मिट्टी कम पड़ जाय तो अशुभ, पूरी तरह से गड्डा भर जाय तो सम और गड्डा भरकर मिट्टी ज्यादा हो जाय तो शुभ होता है।

गड्ढे का स्वरुप–

1 x 1 x 1 हाथ प्रमाण अर्थात् 1 हाथ चौड़ा 1 हाथ लम्बा एवं 1 हाथ गहरा गड्ढा बनावें जिसमें सभी प्रकार के परीक्षण संभव हो सके।
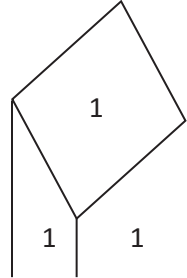
(ख) जल द्वारा परीक्षण–

श्वभ्रमथवाऽम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम्।
तद्धन्यं यच्च भवेत् पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः।।

पूर्वकथित प्रकार से गड्ढे को खोदने के पश्चात् उसमें जल भरकर वहाँ से सौ पद तक दूर जाकर पुनः वापस आने पर यदि गड्ढे का जल ज्यों का त्यों बना रहे तो शुभ होता है। इसी प्रकार वहाँ की धूली से एक आढ़क प्रमाण वाली टोकरी को भरकर पुनः उस धूली को तौलने पर यदि वह धूली चौंसठ पल के बराबर हो तो वह भूमि शुभ होती है।

जल–पूर्ण हो उत्तम 64 आढक तक अच्छा इससेकम खराब होता है।

(ग) दीपक द्वारा परीक्षण–

आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम्।
ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिसतस्य वर्णस्य।।

चार बत्ती वाला दीपक जलाकर मिट्टी के कच्चे बर्तन में रखकर उनमें उत्तर आदि क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों की कल्पना करते हुये उस बर्तन को गड्ढे में स्थापित करने पर जिस दिशा की बत्ती देर तक जलती रहे, उस दिशा के वर्ण के लिये वह भूमि शुभ होती है।

(घ) पुष्प द्वारा परीक्षण–

श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम्।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन् मनो रमते।।

सायङ्कल ब्राह्मण आदि वर्णतुल्य वर्ण वाले पुष्पों (सफेद, लाल, पीले और काले पुष्पों) को लेकर गड्ढे में डाल दे और दूसरे दिन प्रातःकाल उन पुष्पों को निकाल कर देखने पर जिस वर्ण का पुष्प कुम्हलाया न हो, उसके लिये वह भूमि शुभ होती है। अथवा अपना मन जहाँ पर प्रसन्न रहे वहीं पर निवासस्थान बनाना चाहिये, इसमें अधिक विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(ङ) खनन में प्राप्त पाषाणादि के द्वारा परीक्षण–

खाते यदि श्मा लभते हिरण्यं तथेष्टिकायां च समृद्धिरत्र।

द्रव्यं च रम्याणि सुखानि धत्तं ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः।।

यदि खोदते समय पत्थर प्राप्त हो तो सुवर्ण का लाभ, ईट मिले तो समृद्धि होती है, द्रव्य मिले तो उत्तम सुख मिलता है और तामा आदि धातु मिलने पर वृद्धि होती है।

वस्तु	फल
पत्थर	स्वर्ण लाभ
ईट	समृद्धि
द्रव्य	उत्तम सुख
ताम्बा	वृद्धि

पिपीलिका षोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्पा मरणप्रदाः स्युः।।
वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति दुःखम्।
काष्ठं प्रदग्धं यदिरोगभीत्तिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन।।
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तुं प्रदिशन्ति धीराः।।

चींटी, दीमक, अजगर वगैरह मिलने पर उसमें गृहकर्ता को निवास नहीं करना चाहिये। तथा भूसा, भस्म, अण्डा, सर्प आदि निकलने पर मृत्यु, कौड़ी मिलने पर दुःख व कलह की प्राप्ति, कार्पास से विशेष दुःख, जल हुए काठ से अधिक रोग, खप्पर से कलह और लोहे से मकान स्वामी का मरण होता है। इसलिये इनका विचार करके बुद्धिमान् जन को गृहारम्भ कराना चाहिये।

वस्तु	फल
पत्थर, सोना, ईट	समृद्धि
द्रव्य	उत्तम
ताम्बा या धातु	वृद्धि

चीटी, दीमक, मेढक, सर्प	हानि, नहीं वसना चाहिए
भूसा, अण्डा, भस्म	मृत्यु
कौड़ी	दुःख
कपास	विशेष दुःख
जला हुआ काष्ठ	रोग वृद्धि
खपड़ा	कहल
लोहा	नाश

भूपरीक्षण की वैज्ञानिकता– आज के वैज्ञानिक युग में भी हमारी प्राचीन पारम्परिक विधाओं का सर्वोत्तम स्थान है। धर्माश्रय हो या कर्तव्याश्रय परन्तु इसके मूल में सर्वदा वैज्ञानिकता ही विद्यमान रहती है। जिसे प्राचीन काल में धर्मकहकर पुकारा जाता था आज वही विज्ञान नाम से अत्यधिक बोधगम्य बन गया है। आप पूर्व के सन्दर्भ को पढ़ चुके हैं जिसमें भूपरीक्षण के 2 प्रकार का उल्लेख किया गया है। इसका मूलकारण है कि दो प्रकार की स्थितियों का ही परीक्ष्ज्ञण संभव हो पाता है। आज भी कोई भी मृदा विज्ञानसे सन्दर्भित व्यक्ति जब मीट्टी के परीक्षणार्थ जाता है तो उपर्युक्त बाह्य एवं अन्तः इन दो विधाओं के द्वारा ही परीक्षण करता है। ढलान को ध्यान में रखता है कि जल जमाव से गृह की क्षति तो नहीं संभव है या फिर अण्डरग्राउण्ड भवन निर्माण में जलीय बाधा तो नहीं है। या फिर उसर या नमकीन मीट्टी तो नहीं है जिसकी पकड़ गृह के लिए कमजोर हो, ऐसी बहुत सारी सम्भावनाओं पर विचार–विमर्श के बाद वह मीट्टी का परीक्षण आरम्भ करता है। मीट्टी के अन्तः स्वरुप को जानने के लिए निम्नलिखित स्थितियों का ध्यान रखा जाता है।

(क) मीट्टी का रंग

(ख) मीट्टी कीचिकनाई

(ग) मीट्टी का प्रकार (करैली मीट्टी, बालू, दोमट, आदि)

(घ) मीट्टी का घनत्व

(ङ) मीट्टी का गन्ध

(च) मीट्टी के नीचे जलीय व्यवस्था

(छ) मीट्टी के साथ अन्य वस्तुएँ

इस प्रकार मीट्टी का परीक्षण करके उसके बाद गृहनिर्माण की योजना बनाई जाती है। यदि बिना भूमिके परीक्षण का यह कार्य किया जाता है तो उसमें अपव्यय एवं व्यर्थ के परीश्रम एवं तनाव से बचते हुए उत्तम गृह–निर्माण कर सकते हैं। उदाहरणके लिएजिस भी भूमि में थोड़े नीचेही (5 फीट) जल की संभावना होती है वैसे स्थलों में नींव न निकालकर सबसे पहले वहाँ पायलिंग के द्वारा कालम खड़ाकर गृह निर्माण किया जा रहा है। इससे भवन में मजबूती तथा दीर्घायु की प्राप्ति संभव होती है।

गड्ढे से प्राप्त वस्तु का फल–

वस्तु	फल
चींटी, मेढक	निवास न करे
भूषा, भस्म सर्प	मरणप्रद
कौड़ी	दुःख, कलह
कपास	अतिदुःख
जला हुई लकड़ी	रोगभय
खप्पर	कलह
लोहा	मरणप्रद

(च) खात खोदते समय प्राप्त वस्तु द्वारा परीक्षण–

काष्ठेष्टिकातुषाङ्गारपाषाणाऽस्थिसरीसृपान्।
हलाग्रेणोद्धृतान्दृष्ट्वा तत्र विद्यादिदं फलम्।।
काष्ठेष्वग्निभयं विद्यादिष्टिकासु धनागमः।
अङ्गारेषु तथा रोगं तुषेष्वेव धनक्षयः।।
पाणाणेष्वपि कल्याणं कुलनाशं तथाऽस्थिषु।
सरीसृपेषु सर्वेषु तादृग्भ्यो भयमादिशेत्।।

भूमि शुद्ध करने के लिए हल से जातने के समय काष्ठ, ईट, भूसी राख, पत्थर, हड्डी और सर्प इत्यादि यदि भूमि के अन्दर दिखाई पड़े तो यह (नीचे लिखा) फल जानना चाहिये। काष्ठ मिले तो अग्नि से भय, ईट मिले तो कल्याण, हड्डी निकले तो कुल का नाश और जिस प्रकार के जानवर निकलें उनसे भय (अर्थात् साँप निकले तो साँप से भय, बिच्छू निकले तो बिच्छू से भय इत्यादि) होता है।

वस्तु	फल
काष्ठ	अग्निभय
ईट	धन प्राप्ति
राख, कोयला	धन नाश
पत्थर	कल्याण
अस्थि	कुल नाश
जानवर (जैसा)	(वैसा) भय

4.5 सारांश–

उक्त पाठ में निम्नलिखित विषयों की चर्चा मुख्य रुप से की गई है।

I. भूपरीक्षण के सभी पक्षों का विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

II. गृहनिर्माण हेतु नीव को प्रधानभूत कारण मानकर भूमि के अन्तः निहित विशिष्ट वस्तुओं को शुभाशुभ रुप में निर्देशित कर इसकी वैज्ञानिकता से अवगत कराया गया है।

III. भूपरीक्षण के जिन तथ्यों को हमारे प्राचीन ग्रन्थों में विचार विमर्श किया गया है वे सभी तथ्य आज भी मीट्टी परीक्षण (Swil Testing) के माध्यम से किये जा रहे हैं।

IV. जहाँ कहीं पर भी बहुमंजली इमारत या घर बनाये जा रहे हैं उनकी भूमि का परीक्षण प्रकार भी उपर्युक्त तथ्यों के सापेक्ष ही है।

V. भूपरीक्षण के बाद एवं अन्तः विचार के द्वारा यहाँ एक पुष्ट निष्कर्ष का परिज्ञान प्रस्तुत किया गया है।

VI. विविध प्रकार के चित्र के माध्यम से भी वस्तुओं एवं खात में प्राप्त स्थितियों के आधार पर भी शुभाशुभ फल को बताया गया है।

VII. भूपरीक्षण का प्रायोगिक अध्ययन हम किस प्रकार तथा किन साधनों से कर सकते हैं, इसका विस्तार से वर्णन इस पाठ में किया गया है।

4.6 पारिभाषिक पद –

1 हाथ 24 अंगुल प्रमाण = 1 हाथ

खात (प्रमाण) 1X1X1 = 1 (अर्थात् 1 हाथ लम्बा 1 हाथ चौड़ा एवं 1 हाथ गहरा गड्ढे को वास्तु में खात बताया गया है।

4.7 अभ्यास प्रश्न

(1) भूपरीक्षण की आवश्यकता है?

(क) घर बनाने में (ख) पूजन करने में (ग) कृषि में (घ) कहीं नहीं

(2) घृतगन्धा भूमि है?

(क) विप्र हेतु (ख) क्षत्रिय हेतु (ग) वैश्य हेतु (घ) शूद्र हेतु

(3) पूर्वप्लवा भूमि है?

(क) विप्र हेतु (ख) क्षत्रिय हेतु (ग) वैश्य हेतु (घ) शूद्र हेतु

(4) रक्तगन्धा है?

(क) क्षत्रिय हेतु (ख) विप्र हेतु (ग) शूद्र हेतु (घ) वैश्य हेतु

(5) कृष्णवर्णा भूमि है?

(क) विप्र हेतु (ख) क्षत्रिय हेतु (ग) वैश्य हेतु (घ) शूद्र हेतु

(6) धन धान्यदा भूमि है?

(क) पूर्वप्लवा (ख) याम्या (ग) उत्तरा (घ) पश्चिमा

(7) कूर्मपृष्ठ भूमि का फल है?

(क) उत्साह प्राप्ति (ख) दुःख (ग) हानि (घ) मरण

(8) खात खोदने पर भूमि में यदि कोयला प्राप्त हो तो?

(क) धन नाश (ख) मरण (ग) अर्थलाभ (घ) दुःख

प्रश्न	1	2	3	4	5	6	7	8
उत्तर	क	क	ख	क	घ	ग	क	क

4.8 सन्दर्भ एवं सहायक पाठ्य ग्रन्थ–

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	लेखक / सम्पादक
1.	वास्तुरत्नाकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	विन्ध्येश्वरी प्रसाद
2.	राजलल्लभमण्नम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	शैलजा पाण्डेय
3.	वास्तुमण्डनम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	श्रीकृष्ण जुगनू
4.	वास्तु सौख्यम्	सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी	पं. कमलाकान्त शुक्ल
5.	बृहद्दैवज्ञरंजन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी
6.	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7.	वास्तुप्रबंध	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	प्रो. राजमोहन उपाध्याय

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

(क) भूपरीक्षण का क्या अभिप्राय है? स्पष्ट करें।

(ख) भूपरीक्षण का महत्व लिखें?

(ग) भूपरीक्षण की प्रविधि का उल्लेख करें?

(घ) भूपरीक्षण में प्राप्त वस्तुओं के शुभाशुभ फल का वर्णन करें।

इकाई - 5 अहिबल चक्र

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना –

वास्तु एवं ज्योतिष का अभिन्न सम्बन्ध है। वास्तु के अन्तर्गत बहुत सारे विषय ज्योतिष शास्त्र के समाहित हैं जिनके आधार पर विचार किया जाता है। वे चाहें नक्षत्र, राशि, ग्रह, पंचाग आदि क्यों न हों। वस्तुतः लक्षण एवं निमित्त लक्षणों के आधार पर प्रयोग के सापेक्ष विकसित किया गया यह एक पूर्णतया वैज्ञानिक शास्त्र है। विज्ञान की समस्त विधाओं को धार्मिक आधार प्रदान का हमारे ऋषियों ने बोधगम्य एवं धार्मिक समन्वय के साथ शुभाशुभ का विचार भी किया है। ज्योतिष शास्त्र के एक विषय वैशिष्ट्य को लेकर अलग अलग शास्त्रों का निर्माण कालान्तर में होने लगा तथा मनुष्य अपने बुद्धि के द्वारा अनुदिन प्रयास कर ज्ञान को विज्ञान के रुप में परिणत करने लगा। उसका ही एक उदाहरण हमारा वास्तुकला, मूर्तिकला एवं मन्दिर निर्माण, दुर्गनिर्माण आदि है। आज भी हमारी पारम्परिक शैलियाँ निर्माण की दुनिया में सर्वतोभावेन विस्मयकारी हैं। कुछ गंभीर स्थलों में आगम एवं तन्त्र परम्परा का भी प्रभाव वास्तुशास्त्र पर दिखता है परन्तु स्वतन्त्र विधा विकसित कर इस परम्परा को और अधिक समृद्ध किया गया है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ से हमें निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

1. अहिबल चक्र के वास्तविकता से हम परिचित होंगे तथा इसकी गणना में दक्ष होंगे।
2. भूमि के अन्दर स्थित विविध प्रकार के वस्तुओं के परिज्ञान में निपुणता मिलेगी।
3. मकान बनाने योग्य भूमि के परिज्ञान में कुशलता प्राप्त होगी।
4. भूमि के अन्दर स्थित अपद्रव्यों के निष्कासन में सहायता प्राप्त होगी।
5. स्वर्णादि की प्राप्ति एवं खनिज द्रव्यों के परिज्ञान से राजस्व में वृद्धि प्राप्त होगी।

5.3 अहिबल परिचय –

अहिबल चक्र में अहि पद का अर्थ होता है सर्प एवं बल अर्थात् परिकल्पित सर्पाकृति जिसका सम्बन्ध नक्षत्राश्रित है का बलाबल निरुपण ही अहिबल चक्र नाम से बताया गया है। रवि एवं चन्द्र की नाक्षत्रिक स्थितियों के आधार पर विविध प्रकार के गणितीय एवं स्थापन चक्र के वैशिष्ट्य के द्वारा भूमि के अन्दर निहित निधि आदि का ज्ञान किया जाता है।

यद्यपि यह प्रक्रिया सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं है। क्योंकि यह आगम परम्परा का विषय है जिसका सम्बन्ध स्वरशास्त्रीय विद्वान् से भी है। रुद्रयामल एवं आगमिक एवं तन्त्र की परम्परा में विशेष करके वैखानस आगमादि में इसका उल्लेख किया गया है। अतः साधना एवं मन्त्रप्रयोग के साधन द्वारा साधक उक्त विषय को सरलता से ज्ञात कर भूमि के अन्तर्गत स्थित निधि आदि को निकालता है।

अन्त में नक्षत्र स्थापन क्रम में स्वयं आचार्य **'पन्नगाकृतिः'** ऐसा कहकर सर्पाकृति को उद्बोधित करते हैं। रवि–चन्द्राश्रित यह परम्परा प्राचीन काल में अत्यधिक विकसित थी। वर्तमान में इस प्रक्रिया को जानने वाले विद्वानों की संख्या नगण्य सी है। प्रायः समस्त वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में अहिबलचक्र की चर्चा प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति को देखने पर यह लगता है कि प्राचीन काल में इसकी प्रसिद्धि शल्यज्ञान या निधिज्ञान में महत्वपूर्ण रही है। कालान्तर में भी यह प्रक्रिया वर्तमान रही तथा आगमिक परम्परा के प्रायोगिक पक्ष की कमी के कारण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कभी महसूस हो रही है।

5.3.1 अहिबल चक्र में नक्षत्र स्थापन– अहिबल चक्र की विधि निम्नलिखित है।

स्वरोदये–

अहिचक्रं प्रवक्ष्यामि यथा सर्वज्ञभाषितम्।
द्रव्यं शल्यं तथा शून्यं येन जानन्ति साधकाः।।

स्वरोदय में कहा है कि साधक समुदाय जिस चक्र से भूमि में गड़ा हुआ धन, हड्डी तथा शून्य जगह समझ लेते हैं, उस सर्वज्ञ श्रीमहादेव जी के कहे हुए अहिचक्र को मैं कह रहा हूँ।

<u>अहिचक्र स्थापित करने की रीति</u>

निधिर्निर्वर्त्तनैकस्थः सम्भ्रान्तो यत्र भूतले।
तत्र चक्रमिदं स्थाप्यं स्थानद्वारमुखस्थितम्।।

जिस भूमि में एक निवर्तन के भीतर निधि (गढ़ा हुआ धन) सम्भ्रान्त (भूल) हो गया हो उस स्थान के द्वार पर अहि (सर्प) चक्र के मुख को रखकर स्थापित करना चाहिये।

विशेष– निवर्तन यह भूमि का माप है अर्थात् इस मान के भीतर ही खोज उचित होती है। स्वरोदय में कहा है 'वितस्तिद्वितयं हस्तो राजहस्तश्च तद्द्वयम्। दशहस्तैश्च दण्डःस्यात् त्रिंशद्दण्डैर्निवर्तनम्' अर्थ– दो वित्ते का 1 एक हाथ और दो हाथ का एक राजहस्त अर्थात् गज तथा 10 दस गज का 1 एक दण्ड होता है, तथा 30 तीस दण्ड का 1 निवर्तन (30 दण्ड लम्बी, 30 दण्ड चौड़ी भूमि) होता है।

विशेष– लीलावती में 'तथा कराणां दशकेन वंशः। निवर्त्तनं विंशतिवंशसंख्यैः' कहा है।

<u>चक्र निर्माण प्रकार</u>

ऊर्ध्वरेखाष्टकं लेख्यं तिर्यग्रेखा च पञ्चकम्।
अहिचक्रं भवत्येवमष्टाविंशतिकोष्टकम्।।
अष्टाविंशति भान्यत्र कृत्तिकादिक्रमेण च।

आठ खड़ी रेखा और पाँच तिरछी रेखा उनके ऊपर न्यास करने से 28 कोष्ठकों का अहिचक्र होता है। यहाँ कृत्तिकादि क्रम से अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं।

यह उक्ति ग्रन्थकार की सर्प स्थिति वश समझनी चाहिये। अर्थात् चक्र से स्पष्ट है।

चक्र की पहिली पंक्ति में नक्षत्र स्थापन

तत्र पौष्णाश्वियाम्यर्क्षं कृत्तिका मध्यभाग्यमम्।
उत्तराफाल्गुनी लेख्यं पूर्वपंक्त्यां भसप्तकम्।।

प्रथम सात अर्थात् ऊपर के कोष्ठों में क्रम से 1. रेवती, 2. अश्विनी, 3. भरणी, 4. कृत्तिका, 5. मघा, 6. पूर्वा फाल्गुनी, 7. उत्तरा फाल्गुनी को लिखना चाहिये।

दूसरी पंक्ति में नक्षत्र

अहिर्बुध्न्याजपादर्क्षं शतभं ब्राह्मसार्पभम्।

पुष्यं हस्तं समालेख्यं द्वितीयं पंक्तिमास्थितम्।।

दूसरी पंक्ति के साथ कोष्ठकों में क्रम से 1. उत्तरा भाद्रपद, 2. पूर्वा भाद्रपद, 3. शतभिषा, 4. रोहिणी, 5. श्लेषा, 6. पुष्य और 7. हस्त की स्थापना करनी चाहिये।

तीसरी पंक्ति में नक्षत्र

विधिर्विष्णुर्धनिष्ठाख्यं सौम्यं रुद्रं पुर्नवसुम्।

चित्राभं च तृतीयायां पंक्ती धिष्ण्यस्य सप्तकम्।।

तीसरी पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से 1. अभिजित्, 2. श्रवण, 3. धनिष्ठा, 4. मृगशिरा, 5. आर्द्रा, 6. पुनर्वसु, व 7. चित्रा का न्यास करना चाहिये।

चौथी पंक्ति में नक्षत्र स्थापन

विश्वर्क्षतोयभं मूलं ज्येष्ठामैत्रविशाखिके।

स्वाती पंक्त्यां चतुर्थ्यां तु कृत्वा चक्रं विलोकयेत्।।

चौथी पंक्ति के सात कोष्ठों में क्रम से 1. उत्तराषाढ, 2. पूर्वाषाढ, 3. मूल, 4. ज्येष्ठा, 5. अनुराधा, 6. विशाखा, 7. स्वाती नक्षत्र स्थापित करना चाहिये।

एवं प्रजायते चक्रे प्रस्तारः पन्नगाकृतिः।

द्वारशाखे मघायाम्ये द्वारस्था कृत्तिका मता।।

इस प्रकार नक्षत्रों को लिखने पर द्वार में कृत्तिका और द्वार की शाखाओं में मघा और भरणी होने से सर्पाकृति चक्र बनता है।।251।।

उक्त सर्प स्परूप में चित्रा का और मस्तक के बगल में स्थित मघा, भरणी का विशेष विचार करना चाहिये।

<u>अहिबल चक्र न्यास–</u>
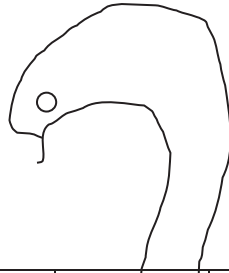
रे.	अश्वि	भर	कृ	म	पू.फ.	उ.फा.
उ.भा.	पू.भा	शत	रो	श्लेषा	पु	हस्त
अभि.	श्रव.	ध	मृ.	आ	पु.	चि
उ.षा	पू.षा	मूल	ज्ये.	अनु	वि	स्वा.

<u>चन्द्र तथा सूर्य के नक्षत्र</u>

अश्वीशपूर्वषाढादि त्रिकपंचचतुष्टयम्।

रेवती पूर्वभाद्रदोर्भानि शेषानि भास्वतः।।

अश्विनी नक्षत्र से तीन (1. अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृतिका), आर्द्रा नक्षत्र से पाँच (1. आर्द्रा, 2. पुनर्वसु, 3. पुष्य, 4. श्लेषा, 5. मघा) और पूर्वाषाढ नक्षत्र से चार (1. पूर्वाषाढ, 2. उत्तराषाढ, 3. अभिजित्, 4. श्रवण) नक्षत्र एवं रेवती व पूर्वाभाद्रपद ये 14 चौदह नक्षत्र चन्द्रमा के होते हैं। शेष चौदह 1. रोहिणी, 2. मृगशिरा, 3. पूर्वाफाल्गुनी, 4. उत्तराफाल्गुनी, 5. हस्त, 6. चित्रा, 7. स्वाती, 8. विशाखा, 9. अनुराधा, 10. ज्येष्ठा,, 11. मूल, 12. घनिष्ठा, 13. शतभिषा व 14. उत्तरा भाद्रपदा ये सूर्य के नक्षत्र होते हैं।

तात्कालिक चन्द्रमा का साधन

उदयादिगता नाड्यो भग्ना षष्ट्याप्तशेषके।
दिनेदुर्भुक्तियुक्तोसौ भवेत्तत्कालचन्द्रमाः।।

प्रश्न कालिक नक्षत्र की उदय से जितनी घड़ी व्यतीत हो गई हो अर्थात् भयात घटिकाओं को 27 सत्ताईस से गुणा करके 60 से अर्थात् भभोग से भाग देने पर लब्धि नक्षत्र, घटीपल मिले उसमें गत नक्षत्र संख्या जोड़ने पर नक्षत्रादि तात्कालिक स्पष्ट चन्द्रमा होता है।

विशेष– यहाँ ग्रन्थकार ने 60 की कल्पना भभोग के स्थान पर की है, किन्तु भभोग से ही भाग देना उचित होता है।

सूर्य का साधन

चन्द्रवत्साधयेत्सूर्यमृक्षस्थं चेष्टकालिकम्।
पश्चाद्विलोकयेत्तौ चेत्स्वर्क्षे वा चान्यभे स्थितौ।।

जिस प्रकार चन्द्र नक्षत्र के भयात भभोग से स्पष्ट चन्द्रमा का साधन पहिले कहा गया है उसी प्रकार इष्ट समय में नक्षत्र स्थित सूर्य का साधन करना चाहिये। अर्थात् जिस नक्षत्र में सूर्य हो उस नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश काल से इष्टकाल तक गत दिनादि को सूर्य सम्बन्धी भयात मानना और आगे के नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश दिन से पूर्व तक भभोग दिन समझकर क्रिया करनी चाहिये। पीछे देखना चाहिये कि ये दोनों अपने–अपने नक्षत्र में हैं या भिन्न–भिन्न में है।

<u>द्वार स्थान ज्ञान</u>

षष्टिघ्नं तन्निशानाथं शरवेदाप्तकं पुनः।
युगैः शेषं भवत्येवं प्रागादिककुभं क्रमात्।।

'नाड्यः उदयादिगता' इत्यादि से साधित चन्द्रमा को 60 से गुणा करके 45 पैतालीस का भाग देकर पुनः 4 का भाग देने से एकादि शेष में पूर्वादि दिशा क्रम से द्वार स्थान चक्र स्थापन का होता है।।256।।

विशेष– पं. सीताराम झा जी ने 'वास्तुरत्नाकर' में तथा अपनी प्रकाशित (अहिबल चक्र नामक) पुस्तक में इस पद्य को प्रामादिक बताकर लिखा है कि 'षष्टिघ्नंस'....। त्रिभिर्भक्त्वा युगैः शेषं प्रागहिचक्रवकुत्रगम्' यह युक्ति संगत है।

5.4 द्रव्यादि ज्ञानोपाय

<u>द्रव्याविज्ञान</u>

चन्द्रऋक्षे यदार्केदू तदास्ति निश्चितं निधिः।
भानुक्षेत्रे स्थितौ तौ चेत्तदा शल्यं च नान्यथा।।

पूर्वरीति से साधित चन्द्रमा व सूर्य दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में हो तो निश्चय निधि (धन) है तथा सूर्य चन्द्रमा दोनों चन्द्रमा के नक्षत्र में होने पर हड्डी है ऐसा समझना चाहिये। इसके विपरीत में कुछ भी नहीं है कहना चाहिये।

शशांके चन्द्रभे द्रव्यशल्यं भवति भानुभे
स्वस्वभे द्वितये ज्ञेयं नास्ति किंचिद् विपर्यये।
स्थितं न लभ्यते द्रव्यं चन्द्रे क्रूरग्रहान्विते।।

यदि सूर्य व चन्द्रमा अपने–अपने नक्षत्र में हों तो धन व हड्डी दोनों कहना चाहिये। यदि विपरीत नक्षत्र में हों अर्थात् सूर्य चन्द्र के नक्षत्र में और चन्द्रमा सूर्य के नक्षत्र में हो तो कुछ भी नहीं होता है। जब चन्द्रमा पापग्रह से युक्त होता है तो स्थिर धन की प्राप्ति नहीं होती है।

ग्रहदृष्टिवशात् सोपि विज्ञेयो नवधा बुधैः।

ग्रहों की दृष्टि से वह नव प्रकार की निधि (धन) होती है।

<u>ग्रह दृष्टि से फल</u>

हेम रौप्यं च ताम्रार रत्नं कांस्यायसं त्रप।।

नागचन्द्रं विजानीयाद्भास्करादि ग्रहेक्षिते।

मिश्रैर्मिश्रे भवेद्द्रव्यं शून्यं दृष्टिविवर्जितम्।।

जब चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि होती है तो सुवर्ण, दैनिक चन्द्र की दृष्टि से मोती, भौम की दृष्टि से तांबा, बुध की दृष्टि से पीतल, गुरु की दृष्टि से रत्न, शुक्र की दृष्टि से काँसा, शनि की दृष्टि से लोहा, राहु की दृष्टि से रांगा और केतु की दृष्टि होने पर शीशा होता है। मिश्रित ग्रहों की दृष्टि से मिश्रित और दृष्टि के अभाव में धन का अभाव होता है।

महानिधि ज्ञान

सर्वग्रहेक्षिते चन्द्रे निर्दिष्टोसौ महानिधिः।

पुष्टे चन्द्रे भवेत्पुष्टं क्षीणे चन्द्रेल्पको निधिः।।

चन्द्रमा जब समस्त ग्रहों से दृष्ट होता है तो महानिधि (खजाना), पुष्ट चन्द्र हो तो पुष्ट और क्षीण चन्द्र होने पर अल्प धन होता है।

ग्रहदृष्टिवशात्सोपि विज्ञेयो नवधा बुधैः।।

ग्रह की दृष्टि से उस महानिधि को भी नव प्रकार से समझना चाहिये।

धन का वर्तन ज्ञान

हेमं तारं च ताम्रं च पाषाणं मृण्मयायसम्।

सूर्यादिगृहगे चन्द्रे द्रव्यभांडं प्रजायते।।

चन्द्रमा जब सूर्य की राशि में होता है तो सोने के बर्तन में, अपनी राशि में होने पर चाँदी के पात्र में, मंगल की राशि होने पर ताँबे के में, बुध की राशि में पीतल के भाण्ड में, गुरु की राशि में होने पर पत्थर के में, शुक्र की राशि में मिट्टी के में और शनि की राशि में चन्द्रमा होने पर लोहे के पात्र में धन होता है।

शुभ या पाप घर में चन्द्र का फल

शुभक्षेत्रगते चन्द्र द्रव्यलाभो न संशयः।

पापक्षेत्रे न लाभः स्याज्ज्ञातत्वं ज्योतिषां वरैः।।

शुभग्रह की राशि में चन्द्रमा होने पर निःसंदेह द्रव्य का लाभ और पापग्रह की राशि में अलाभ होता है। ऐसा श्रेष्ठ ज्योतिषियों को जानना चाहिये।

धन कितने हाथ नीचे भूमि में है?

भुक्तराश्यंशमानेन भूमान कामिको करैः।
नीचे द्विघ्नं परे नीचे जलस्योसौ महानिधिः।।

चन्द्र राशि के जितने अंश व्यतीत हो गये हों उतने मकान मालिक के हाथ से नीचे धन या गत नवांश तुल्य हाथ नीचे द्रव्य होता है। यदि चन्द्रमा वृश्चिक राशि में हो तो उससे दुगुने हाथ नीचे और परम नीच राशिस्थ होने पर जल में धन होता है।

स्वोच्चस्थेत्यूध्वर्गं द्रव्यं नवमाशं क्रमेण च।
परमोच्चे परे तुंगे भित्तिस्थमृक्षसंक्रमे।।

चन्द्रमा के उच्चराशि में होने से नवांश क्रम से जहाँ धन गड़ा है उससे ऊपर समझना और परमोच्च में या नक्षत्र सन्धि में होने पर जमीन से भी ऊपर उतने हाथ भीत में द्रव्य होता है।

द्रव्य संख्या ज्ञान

चन्द्रांशभुक्तमानेन द्रव्यसंख्या विधीयते।
तस्माद्दशगुणा वृद्धिः षड्वर्गेन्दुबलक्रमात्।।

चन्द्रमा जितने अंश भोग कर चुका हो उतनी ही धन की संख्या होती है। तथा चन्द्रमा के षडवर्ग बल के क्रम से संख्या की दस गुना वृद्धि होती है। अर्थात् एक वर्ग में 10 दस गुना, दो में 100 गुना, तीन में 1000 गुना, इत्यादि आगे भी जानना चाहिये।

धन के अधिष्ठातृ देवता

अधिष्ठितं भवेदद्रव्यं यत्र चंद्रो ग्रहान्वितः।
तदाधिष्ठायको ज्ञेया भास्करादिग्रहैः क्रमात्।।

जिस स्थान में (अहि चक्र के कोष्ठक) चन्द्रमा ग्रह से युक्त होकर स्थित होता है उस स्थानमें अधिष्ठित द्रव्य समझना चाहिये। और सूर्यादि ग्रह से चन्द्र होने पर आगे बताये हुए क्रम से अधिष्ठायक देवता होता है।

ग्रहं मुग्धग्रहं चैव क्षेत्रपालं च मातृकम्।
द्वीपेशं भीषणं रुद्रं यक्षं नागं विदुः क्रमात्।।

चन्द्रमा सूर्य से युत होने पर जैसे ग्रह, केवल दैनिक चन्द्र होने से मुग्ध ग्रह, भौम से क्षेत्रपाल, बुध से मातृका, गृरु से द्वीपेश, शुक्र से भीषण, शनि से रुद्र, राहु से यक्ष और केतु से चन्द्र युक्त होने पर द्रव्य का देवता सर्प होता है।

अधिष्ठायक देव की पूजा

ग्रहे होमः प्रकर्तव्यो मुग्धे नारायणी बलिः।
क्षेत्रपाले सुरामांसं मातृकायां महाबलिः।।
द्वीपेशे द्वीपिकापूजा भीषणे भीषणार्चनम्।
रुद्रे च रुद्रजो जाप्यो यक्षे यक्षादिशांतिकम्।।
नागे नागगणाः पूजा गणनाथेन संयुताः।
लक्ष्मीधरादि तत्त्वानि सर्वकर्माणि पूजयेत्।।

जब धन के अधिष्ठायक देवता नवग्रह होते हैं तो उनका हवन, मुग्ध में नारायणी बली देना, क्षेत्रपाल होने पर शराब व मांस, मातृका होने पर महाबलि, द्वीपेश में द्वीप पूजा, भीषण में भीषण की पूजा, रुद्र में रुद्र जप (रुद्री) पाठ, यक्ष में यक्ष की और नाग अधिष्ठाता देवता होने पर गणेण पूजा के साथ सर्पगण की पूजा करनी चाहिये। तथा सब कार्यों में लक्ष्मी जी की और भूमि आदि पाँच (भूमि, जल–वायु–अग्नि आकाश चक्र स्थापना) तत्त्वों की पूजा करनी चाहिये।

निवर्तनेकमध्ये च संभ्रांतं यत्र भूतले।
तत्र चक्र लिखेद्धीमान् द्रव्यशल्यस्य निर्णयः।।

एक निवर्तन भूमि में जहाँ भ्रम हो वहाँ पर धन व हड्डी ज्ञान के लिये बुद्धिमान् को चक्र स्थापना करनी चाहिये।

एवं कृते विधानेन निधिः साध्योपि सिद्ध्यति।
निधिप्राप्ता नरा लोके वंदनीया न संशयः।

विधि विधान से अधिष्ठाता देव की पूजा करने पर दुःसाध्य निधि की प्राप्ति होती है। इसके जानने वालों की संसार में निश्चय ही अर्चना होती है।

5.4.1 वास्तुकुण्डली का शुभाशुभ फल विचार–

लग्नस्थ ग्रहों का फल

वास्तुरत्नप्रदीपे–

लग्नेर्के बज्रपातः स्यात् कोशहानिश्च शीतगौ।

मृत्युर्विश्वंभरापुत्रे दारिद्र्यं रविनंदने।।

जीवे धर्मादिकामाः स्युः सुतोत्पत्तिश्च भार्गवे।

चन्द्रजे कुशला शक्तिर्जनस्यायुः प्रवर्द्धते।।

वास्तुरत्नप्रदीप में बताया है कि लग्न में सूर्य होने पर वज्रपात, चन्द्रमा से धन हानि, मंगल से मृत्यु, शनि से दरिद्रता, गुरु से धर्मादिकार्य, शुक्र से पुत्र की उत्पत्ति और वास्तुकुण्डली लग्न में बुध होने पर कुशल शक्ति एवं आयुष्य वृद्धि होती है।

<u>द्वितीयस्थ ग्रहों का फल</u>

द्वितीयस्थे रवौ हानिश्चंद्रे शत्रुक्षयो भवेत्।

भूसुते बंधनं प्रोक्तं नानाविघ्नाश्च भानुजे।।

बुधे द्रविणसंपत्तिर्गुरौ धर्मसमागमः।

यथा कामविनोदेन भृगौ कालं व्रजेदिह।।

दूसरे भाव में सूर्य के होने पर हानि, चन्द्र से शत्रु का क्षय, मंगल से बन्धन, शनि से अनेक विघ्न, बुध से धन सम्पत्ति, गुरु से धर्म समागम और शुक्र दूसरे भाव में होने से काम (विषय वासना) विनोद से समय व्यतीत होता है।

<u>तीसरे भाव में ग्रहों का फल</u>

सौम्यग्रहास्तृतीयस्थाः पापा अपि विशेषतः।

सिद्धिः स्यादचिरादेव यथाभिलषितं प्रति।।

तीसरे भाव में शुभ ग्रह व विशेषकर पापग्रह होने पर शीघ्र ही मनोभिलषित सिद्धि होती है।

<u>चौथे भाव में ग्रहों का फल</u>

चतुर्थस्थानगे जीवे पूजा संपद्यते नृपात्।

चन्द्रजे च सदा लाभो भूमिलाभस्तु भार्गवे।।

वियोगः सुहृदा भानौ मित्रभेदो धरासुते।

बुद्धिनाशो निशानाथे महालाभार्कनंदने।।

चौथे भाव में गुरु के होने पर राजा से पूजा, बुध से सदा लाभ, शुक्र से भूमिलाभ, सूर्य से मित्र वियोग, मंगल से मित्र शत्रुता, चन्द्रमा से बुद्धि नाश और शनि चौथे में होने पर बड़ा लाभ होता है।।

पाँचवें भाव में ग्रहों का फल

पंचमस्थे सुराचार्ये मित्रवस्तुधनागमः।
शुक्रे पुत्रधनप्राप्तिर्हेमाभरणमिंदुजे।।
सुतदुःख सदा सूर्ये शशांके कलहागमः।
भौमे कामविरोधः स्याच्छनौ कामविमर्दनम्।।

पाचवें भाव में गुरु होने पर मित्र, वस्तु व धन का आगम, शुक्र से पुत्र धनप्राप्ति, बुध से सोने के आभूषण, सूर्य से पुत्र सम्बन्धी दुःख, चन्द्रमा से कलह का आगमन, मंगल से काम विरोध और शनि से काम का विनाश होता है।

छठें भाव में ग्रहों का फल

षष्ठस्थानगते सूर्ये पूजा संपद्यते नृपात्।
चन्द्रे पुष्टिः कुजे प्राप्तिः सौरे शत्रुबलक्षयः।।
गुरौ चार्थोदयः प्रोक्तो भृगौ विद्यागमो भवेत्।
मानज्ञानस्य कौशल्यं नक्षत्रपतिनन्दने।।

छठे स्थान में सूर्य के होने पर राजा से पूजा, चन्द्रमा से पुष्टि, भौम से प्राप्ति, शनि से शत्रु के बल का क्षय, गुरु से धन का उदय, शुक्र से विद्या का आगम, और छठे भाव में बुध के होने पर सम्मान ज्ञान की कुशलता होती है।

सातवें भाव में ग्रहों का फल

लग्नात्सप्तमगे जीवे बुधे दैत्यपुरोहिते।
गजवाजिधरित्रीणां क्रमाद्भोगं विनिर्दिशेत्।।
भास्करे कीर्तिभंगः स्यात्कुजे विग्रहमादिशेत्।
चन्द्रे मन्दे युते मांद्यं हीनांगत्वं भयं तथा।।

लग्न से सातवें भाव में गुरु, बुध, शुक्र होने पर हाथी, घोड़ा, भूमि का क्रम से भोग अर्थात् गुरु से हाथी का भोग, बुध से घोड़ा का, शुक्र से भूमि का उपभोग, सूर्य से यश का नाश, भौम से लड़ाई, चन्द्रमा व शनि से मन्दता व हीनाङ्गत्व होता है।

आठवें भाव में ग्रहों का फल

निधनस्थे सहस्राशौ शत्रुतो विपदः सदा।
हानिः शीतमयूखे च मंगले रविजे भयम्।।
बुधे मानधनप्राप्तिः सुरेज्ये विजयो महान्।
शुक्रे स्वजनतो दद्यात्सुखं पुंसां विशेषतः।।

आठवें भाव में सूर्य के होने पर शत्रु से सदा विपत्ति, मंगल व चन्द्रमा से हानि, शनि से भय, बुध से मान–धन की प्राप्ति, गुरु से अधिक विजय और शुक्र से विशेष कर पुरुषों को सुख होता है।

नवें भाव में ग्रहों का फल

नवमस्थानगे जीवे बुद्धिभाग्याभिवर्द्धनम्।
बुधे विविधभोगाप्तिः शुक्रे मन्दोदयो भवेत्।।
चन्द्रे धातुक्षयः प्रोक्तो धर्महानिश्च भास्करे।
कुजे सामर्थ्यहानिः स्याद्रविजे कामदूषणम्।।

नवें भाव में गुरु के होने पर बुद्धि, भाग्य की वृद्धि, बुध से अनेक भोगों की लब्धि, शुक्र से मन्दता का उदय, चन्द्रमा से धातु क्षय, सूर्य से धर्म की हानि, भौम से समर्थता का ह्रास और शनि से काम का दोष होता।

दशम भाव में ग्रहों का फल

दशमस्थानगे शुक्रे शयनासनसिद्धयः।
सुराचार्ये महत्सौख्यं विजयश्च तथा बुधे।।
मार्तण्डे धनवृद्धिश्च चन्द्रे कोशविवर्द्धनम्।
भौमे बलं सदा पुंसां शनौ कीर्तिविलोपनम्।।

दसवें भाव में शुक्र के होने पर शयन, आसन, सिद्धि, गुरु से बड़ा सुख, बुध से विजय, सूर्य से धन की वृद्धि, चन्द्रमा से कोश की वृद्धि, भौम से सदा बल और दसवें में शनि होने पर कीर्ति (यश) का नाश होता है।।

ग्यारह व बारहवें में ग्रहों का फल

लाभस्थानगताः सर्वे प्रयच्छति शुभं फलम्।
व्यये सर्वे सदौदास्यं प्रदिशन्ति विशेषतः।।

गृहारम्भ की लग्न से ग्यारहवें में समस्त ग्रह शुभ फल देने वाले और बारहवें में समस्त ग्रह (शुभ–पाप) विशेष कर सर्वदा उदासीनता देनेवाले होते हैं।

फल ज्ञान सारणी

ग्रहा	सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
तनु 1	वज्रपात	कोश हानि	मृत्यु	सामर्थ्य	त्रिवर्ग	पुत्रोत्पत्ति	दारिद्रय
धन 2	हानि	शत्रु क्षय	बन्धन	धन संपत्	धर्मलाभ	विनोद	नानाविध
तृतीय 3	विशेष लाभ	शुभ	अतिशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अतिशुभ
चतुर्थ 4	महालाभ	बुद्धि नाश	मित्र भेद	लाभ	नृपमान्य	भूमिलाभ	मित्रविरह
पचम 5	पुत्र पीड़ा	कलह	कार्य हानि	स्वर्ण लाभ	मित्रार्थ लाभ	पुत्रार्थप्राप्ति	कामनाश
छठा 6	राजपूजा	पुष्टि	मानादि लाभ	धनलाभ	विद्या लाभ	विद्यालाभ	शत्रुहानि
सप्तम 7	कीर्ति भंग	रोग	विग्रह	अश्वलाभ	राजभोग	भूमियोग	नानाभय
अष्टम 8	शत्रु से दुःख	हानि	भय	मानादिलाभ	विजय	स्वजन सुख	भय
नवम 9	धर्महानि	धातुक्षय	सामर्थ्य हानि	नानाभोग लाभ	बुद्धि भाग्य वृद्धि	मन्दोदय	काम दूषण
दशम 10	धन वृद्धि	कोशवृद्धि	बलवृद्धि	विजय	बड़ा सुख	शय्यादि सुख	कीर्तिहानि
एकाद.11	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ
द्वादश 12	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि	हानि

5.5 सारांश –

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं।

I. इस पाठ में विस्तृत रुप से अहिबल के वास्तविक स्वरुप को बताया गया है।

II. भूमि के अन्तर्गत निहित निधि, राख, कोयला एवं स्वर्णादि किस–किस स्थान पर है आदि को विस्तार पूर्वक बताया गया है।

III. सूर्य एवं चन्द्र के पृथक् पृथक् नक्षत्रों का विभाजन करते हुए इनके द्वारा अहिबल चक्र में स्थापन करने की प्रविधि भी बताई गई है।

IV. रुद्रामल एवं आगमिक परम्परा के द्वारा साधक हेतु यह प्रधानभूत प्रविधि है जिसका सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्र से है।

V. द्रव्यादि ज्ञानोपाय हेतु विविध प्रकार के विचार भी यहाँ लिखित हैं जिनके द्वारा समाज का हित भी किया जा सकता है।

VI. वास्तुकुण्डली के निर्माण परम्परा एवं उससे फल का निर्धारण भी यहाँ किया गया है।

VII. यहाँ यद्यपि विस्तृत रुप से अहिबल चक्र का प्रयोजन बताया गया है तथापि मुख्य प्रयोजन भूमि के अन्तर्गत दूषित पदार्थों से बचाना है।

5.6 पारिभाषिक पद –

अहिबल– सर्पाकृति द्वारा स्थापित नक्षत्र स्थापन के शुभाशुभ बल की गणना।

सूर्यनक्षत्र– यहाँ सूर्य के कुछ नक्षत्र परिकल्पित हैं– जैसे रोहिणी, मृगशीर्ष, पू.फा., उ. फा. हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, शतभिष्, उ.भा.।

चन्द्र नक्षत्र– यहाँ चन्द्रमा के कुछ नक्षत्र परिकल्पित हैं। जैसे अश्विनी से 3 एवं आर्द्रा से 5 एवं पू.षा से 4 तथा रेवती एवं पू. भाद्रपद नक्षत्र (14) चन्द्र नक्षत्र हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्न –

(1) अहि पद का क्या अर्थ है?

(क) बिल्ली (ख) सर्प (ग) भूमि (घ) गृह

(2) अहिबल चक्र का सम्बन्ध है?

(क) स्वार से (ख) प्रश्न से (ग) गणित से (घ) कहीं से नहीं

(3) सूर्य नक्षत्र नहीं है?

(क) चित्रा (ख) स्वाती (ग) पू.भा. (घ) उ.भा.

(4) चन्द्र नक्षत्र हैं?

(क) चित्रा (ख) विशाखा (ग) हस्त (घ) रेवती

(5) सर्प के मुख में नक्षत्र हैं।

(क) कृतिका (ख) पुनर्वसु (ग) मघा (घ) आर्द्रा

(6) चन्द्रमा सभी ग्रहों से दृष्ट हो तो?

(क) महानिधि (ख) अल्पधन (ग) दरिद्रता (घ) भय

(7) रवि–चन्द्र दोनों यदि चान्द्र नक्षत्र पर हों तो?

(क) शल्य (ख) निधि (ग) राख (घ) कोयला

(8) रवि–चन्द्र अपने अपने नक्षत्र में हों तो?

(क) शल्य (ख) निधि (ग) कुछ नहीं (घ) ताँबा

(9) चन्द्र स्वराशि में हो तो?

(क) चाँदी में (ख) स्वर्ण में (ग) ताँबा में (घ) लोहे में

(10) चन्द्र शुभग्रह की राशि में हो तो?

(क) शीघ्र लाभ (ख) अलाभ (ग) हानि (घ) चोरी

प्रश्न	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
उत्तर	ख	क	ग	घ	क	क	ख	क	क	क

5.8 सन्दर्भ एवं सहायक पाठ्य ग्रन्थ –

क्रम	पुस्तक	प्रकाशक	लेखक / सम्पादक
1.	वास्तुरत्नाकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी	विन्ध्येश्वरी प्रसाद
2.	राजलल्लभमण्नम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	शैलजा पाण्डेय
3.	वास्तुमण्डनम्	चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी	श्रीकृष्ण जुगनू

4.	वास्तु सौख्यम्	सम्पूर्णानन्द सं.वि.वि., वाराणसी	पं. कमलाकान्त शुक्ल
5.	बृहद्दैवज्ञरंजन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी
6.	मुहूर्तचिन्तामणि	चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी	प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय
7.	वास्तुप्रबंध	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी	प्रो. राजमोहन उपाध्याय

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

(1) अहिबल चक्र का विस्तृत रुप से परिचय दें।

(2) अहिबल चक्र निर्माण प्रक्रिया लिखें।

(3) अहिबल चक्र का शुभाशुभ विचार लिखें।

खण्ड - 3
आयादि एवं अन्य विचार

इकाई - 1 शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना –

प्रियच्छात्र! आपलोगों ने पूर्वखण्ड वास्तु पुरुष एवं भूशोधन शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न इकाईयों में विभक्त काकिणी विचार, वास्तु पुरुष का स्वरूप, भूशोधन प्रकार, भूपरीक्षण विधि एवं अहिबल चक्र इत्यादि विषयों का अध्ययन किया था। प्रस्तुत इकाई डीवीएस (DVS)- 102 के तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई ''शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार'' नामक शीर्षक से सम्बन्धित है।

वस्तुतः वास्तुशास्त्र घर, प्रसाद, भवन अथवा मन्दिर निर्माण करने का प्राचीन भारतीय विज्ञान है, जिसे आधुनिक समय के विज्ञान 'आर्किटेक्चर' का प्राचीन स्वरूप माना जा सकता है। 'गृहरचनावच्छिन्न भूमेः' अर्थात् घर निर्माण के योग्य भूमि को **वास्तु** कहते हैं। वास्तु वह विज्ञान है जो भूखण्ड पर भवन–निर्माण से लेकर उसमें इस्तेमाल होने वाली प्रत्येक वस्तु के बारे में मार्गदर्शन करता है। ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र परस्पर एक–दूसरे से सम्बद्ध हैं। वास्तुशास्त्र पूर्णतया ज्योतिषशास्त्र पर ही आधारित है। वास्तुशास्त्र का प्रारम्भ एवं समापन ज्योतिष से ही होता है। जैसे– यदि हम गृह–निर्माण का विचार मात्र भी करते हैं तो वास्तुशास्त्र के अनुसार सर्वप्रथम दिक्साधन, मेलापक, आयादि विचार करने के पश्चात् भूमि परीक्षण एवं भू–शोधन कर भूमि–पूजनोपरांत गृहनिर्माण प्रारंभ किया जाता है। काकिणी इत्यादि सभी विचार ज्योतिषशास्त्र पर ही आधारित है। अतः ये दोनों शास्त्र एक–दूसरे के पूरक है।

इस इकाई में हम शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- बता सकेंगे कि भवन–निर्माण से पूर्व भूमि शल्ययुक्त है या शल्य रहित है।
- समझा सकेंगे की शल्ययुक्त भूमि पर भवन निर्माण के शुभाशुभ परिणाम क्या हैं?
- शल्यनिष्कासन विधि को समझ लेंगे।
- शल्योद्धार विधि को जान लेंगे।

- इस पाठ के अध्ययनोपरांत शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार के विषय में आप निपुणता प्राप्त करेंगे।

1.3 शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार : सामान्य परिचय–

ज्योतिष वेदाङ्ग के संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत वास्तुविद्या का विचार किया जाता है। भारतीय वास्तुशास्त्र का संबंध भवननिर्माण कला से है। इसका मुख्य उद्देश्य मनुष्य के लिए ऐसे भवन का निर्माण करना है जिसमें मनुष्य आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति करता हुआ सुख, शांति और समृद्धि प्राप्त करे। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वास्तुशास्त्र के आचार्यों ने भवन निर्माण के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का उपदेश किया है, उन्हीं सिद्धान्तों में से एक है– शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार सिद्धान्त। शल्यशोधन सिद्धान्त भूमि के शल्यदोष के निवारण की एक विधि है। भूमि की गुणवत्ता उसमें दोषों की न्यूनता होने पर बढ़ती है और भूमि के दोषों में से एक दोष शल्य–दोष भी है। शल्य से युक्त भूमि पर भवन निर्माण सदैव अशुभ परिणामों को प्रदान करते हैं।

अतः भवन निर्माण से पूर्व शल्यशोधन विधि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। शल्यशोधन के विषय में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में शल्योद्धार के नाम से एक विधि का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार शल्यशोधन कर शल्यरहित भवन का निर्माण किया जा सकता है। वास्तुशास्त्र में शल्य का अर्थ है– गौ, घोड़ा, कुत्ता या किसी भी जीव की अस्थि से है। इस अस्थि के भवन की भूमि में रहने पर उस भूमि को शल्ययुक्त माना जाता है। भस्म, वस्त्र, खप्पर, जली हुई लकड़ी, कोयला आदि को भी शल्य को श्रेणी में परिगणित किया जाता है। इन सभी वस्तुओं को भवन की भूमि से निष्कासन की प्रक्रिया ही शल्यशोधन के नाम से जाना जाता है।

1.3.1 विश्वकर्मप्रकाशोक्त शल्यज्ञान एवं शल्योद्धार विधि–

अथापरमपि ज्ञानङ्कथयामि समासतः।
षड्गुणीकृतसूत्रेण शोधयेद्धरणीतले।।
सुधृते समये तस्मिन्सूत्रेङ्केनापि लङ्घितम्।
तदस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः।।
अभ्यक्तो दृश्यते यस्यां दिशि शल्यं समादिशेत्।

तस्यामेव तदस्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः।।
सूत्रिते समये यत्र श्वा सूत्रोपरि संस्थितः।
तदास्थि तत्र जानीयात् षष्ठ्यङ्गुलमितक्षितौ।।
उन्मादे चागते तस्मिन् समये यत्र संस्थितः।
तदास्थि तत्र जानीयाद्हस्तद्वयमितक्षितौ।।
सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुम्भेऽथवा यदि।
आदिशेन्निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तथा।।

शल्यज्ञान के सम्बन्ध में विश्वकर्मप्रकाश ग्रन्थ में कहा गया है कि छः गुना सूत्र से भूमि का संशोधन करना चाहिए। संशोधन के समय कोई उस सूत्र को लाँघ जाय तो यहाँ पर एक पुरुष प्रमाण नीचे शल्य है, ऐसा समझना चाहिए। अथवा उस समय उबटन जिस दिशा में दिखाई दे उस दिशा में शल्य (अस्थि) उस भूमि जिस पर भवन निर्माण अपेक्षित है, उसके सत्तर (70) अङ्गुल नीचे है, ऐसा जानना चाहिए। अथवा उस सूत्र के ऊपर यदि कुत्ता आ जाए तो उस भूमि में 60 अङ्गुल गहरा शल्य (अस्थि) है, ऐसा समझना चाहिए। यदि कोई पागल आदमी आ जाए तो दो हाथ गहरा शल्य उसी स्थान पर समझे। यदि उसी समय सूत्र टूट जाए अथवा घड़ा फूट जाए तो स्त्री–पुरुष दोनों की मृत्यु होती है।

अभ्यास प्रश्न–1

अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में दें–

प्र0 1 भूमि संशोधन के समय उबटन जिस दिशा में दिखाई दे, तो वहाँ शल्य की गहराई कितनी होगी?

प्र0 2 यदि भू–सूत्र को कुत्ता लांघता है तो शल्य की गहराई क्या होगी?

प्र0 3 किस समय पुरुष–प्रमाण का शल्य ज्ञात होगा?

प्र0 4 सूत्र टूटने पर कैसा अपशकुन होता है?

1.3.2 महाज्योतिर्निबन्ध के अनुसार शल्यनिष्कासन–विधि एवं उसके फलविचार–

स्मृत्वेष्टदेवतां प्रश्नवचनस्याद्यमक्षरम्।

गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते।।

इष्टदेवता का स्मरण करके प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का पहला अक्षर लेकर भूमि में शल्य है या नहीं इसका विचार करना चाहिए।

विधि–

शल्य निकालते समय तीन ब्राह्मणों द्वारा ''ऊँ धरणीविदारिणौ भूत्वा स्वाहा'' इस मन्त्र से 30,000 अर्थात् 3 × 30,000 = 40,000 जप करायें। तत्पश्चात् गृहकर्ता द्वारा भूमि का स्पर्श कराकर यदि ब्राह्मण है तो किसी पुष्प, क्षत्रिय हो तो किसी नदी, वैश्य हो तो किसी देवता और शूद्र हो तो किसी फल का नाम लेने को कहें। इनके द्वारा कहे गये पुष्पादि के आद्य अक्षर व, क, च, त, ण, ह, स, य, ज के अनुसार फल का निर्देश करें। यथा–

व प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि मनुजशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे मनुजमरणं कथयति।

क प्रश्ने पूर्वस्यां दिशि खरशल्यं कटिमात्रे नृपदण्डं वा गोमरणं कथयति।।

च प्रश्ने दक्षिणस्यां वानरशल्यं कटिमात्रे गृहाधीशस्य मृत्युं जनयति।

त प्रश्ने नैर्ऋत्यामश्वशल्यं सार्द्धहस्तमात्रे दुःखप्रदर्शनं कथयति।।

ण प्रश्ने प्रतीच्यां नरशल्यं पुरुषमात्रे धनापहरणं कथयति।

ह प्रश्ने वायव्यां द्विजशल्यं कटिमात्रे निर्धनं जनयति।।

स प्रश्ने उत्तरदिशि कटिमात्रे गोशल्यं गृहपतिमरणं कथयति।

य प्रश्ने चैशान्यां सार्द्धहस्तमात्रे ऋक्षशल्यं गोधननाशं जनयति।।

ज प्रश्ने मध्यभागे नरकपालं भस्मादिकं वा हृन्मात्रे कुलनाशं कथयति।।

गृहे शल्याभावे शुभमिति वदेद् वास्तुकुशलः।।

- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'व' हो तो पूर्व दिशा में डेढ़ (1½) हाथ नीचे मनुष्य की हड्डी होगी, ऐसा जानना चाहिए तथा इसका फल 'मृत्यु' है।
- यदि प्रश्न का पहला अक्षर 'क' हो तो उस भूखण्ड के जिस पर गृहनिर्माण अपेक्षित है, उसके आग्नेय कोण में गधे की हड्डी कमर तक की गहराई में होगी तथा जिसका फल– पशुनाश।

- यदि प्रश्न का पहला अक्षर च हो तो उस भूखण्ड के जिस पर गृहनिर्माण अपेक्षित है, उसके दक्षिण दिशा में वानर की हड्डी कमर तक की गहराई में होगी, ऐसा समझना चाहिए। जिसका फल– गृहपति की मृत्यु।
- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर त हो तो उस भूमि के नैऋत्य कोण में डेढ़ (1½) हाथ नीचे घोड़े की हड्डी होगी, ऐसा फलादेश करना चाहिए। जिसका फल– 'दुःख' है।
- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'ण' हो तो उस भूखण्ड के पश्चिम दिशा में एक पुरुष के तुल्य गहराई में मनुष्य की हड्डी होगी। जिसका फल– 'धननाश' होता है।
- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'ह' हो तो वायव्य कोण में किसी ब्राह्मण व्यक्ति की हड्डी उस भूखण्ड के कटिमात्र गहराई में होगी, ऐसा जानना चाहिए। फल– 'निर्धनता'।
- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'स' हो तो उस भूमि के उत्तर दिशा में कटि मात्र गहराई में गाय की हड्डी होगी। फल– गृहपति की मृत्यु।
- यदि प्रश्न का पहला अक्षर 'य' हो तो उस भूखण्ड के ईशान कोण में डेढ़ (1½) हाथ नीचे 'भालू' की हड्डी होगी, ऐसा फलादेश करना चाहिए। फल– गोधन का नाश।
- यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर 'ज' हो तो भूखण्ड के मध्यभाग में नरकपाल भस्मादि मनुष्य की छाती के बराबर गहराई में होगी। फल– कुलनाश।
- शल्य के अभाव में अथवा शल्यरहित भूखण्ड शुभ होता है। अतः शल्य को निकालकर ही चयनित भूखण्ड पर गृह का निर्माण करना शुभप्रद होता है।

अभ्यास प्रश्न–2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

प्र0 1 यदि प्रश्न का प्रथम अक्षर व हो, तो....................दिशा में शल्य होगा।

प्र0 2 शल्यरहित भूखण्ड....................होता है।

प्र0 3 यदि प्रश्न का आद्य अक्षर य हो तो....................दिशा में शल्य होगा।

प्र0 4 उत्तर दिशा में....................की हड्डी मिलने पर गृहपति की मृत्यु होगी।

1.3.3 वास्तुराजवल्लभ में शल्यानयन–विधि–

प्रश्नत्रयं वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य चापि।

वाच्यं हि कोष्ठाक्षरसंस्थितेन शल्यं विलोक्यं भवनेषु सृष्ट्या।।
आ का चा टा ए त शा पा य वर्गाः प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्ययुक्तम्।
केशाङ्गाराः काष्ठलौहास्थिकाद्यं तस्मात्कार्यं शोधनं भूमिकायाः।।

अन्वयः– वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य च सृष्ट्या कोष्ठाक्षरसंस्थितेन प्रश्नत्रयं हि विलोक्य भवनेषु शल्यं वाच्यम्। प्राच्यादिस्थे कोष्ठके आ का चा टा ए त शा पा य वर्गाः केश–अंगाराः–काष्ठ–लौह–अस्थिकाद्यं शल्यम् उक्तम्। तस्मात् भूमिकायाः शोधनं कार्यम्।

भावार्थः– वापि = अथवा अन्यप्रकारेण अपि, गृहाधिपेन = वास्तुस्वामिना, देवस्य = विष्णवादिदेवस्य, वृक्षस्य = निम्बादिवृक्षस्य, फलस्य = आम्रादिफलस्य नामानि उच्चारिते सति नाम्नः आद्याक्षरस्य, चापि, सृष्ट्या कोष्ठाक्षरसंस्थितेन = निर्मितकोष्ठानुसारेण, प्रश्नत्रयं = देवादितयः प्रश्नाः तान्, विलोक्य = दृष्ट्वा, भवनेषु = गृहेषु, शल्यं = अस्थिप्रभृतिशल्यं, वाच्यं = वक्तव्यम्। कस्मिन् भागे शल्यमस्तीति कथयेत्।

आ–का–चा–टा–ए–त–शा–पा–य–वर्गाः, प्राच्यादिस्थे = कोष्ठके पूर्वादिदिक्षु संस्थिते शल्यम् = अस्थिप्रभृतिशल्यं, उक्तं = कथनीयमिति भावः। प्रश्नस्य आद्याक्षरं यस्मिन्, कोष्ठके = प्रकोष्ठे भवेत्, तस्मिन् स्थाने केशाङ्गाराः = केशाः अङ्गाराश्च, काष्ठलौहास्थिकाद्यं = दारु–लौह–अस्थि–प्रभृतिशल्यादिकं स्यात्। तस्मात् = ततः शल्यादिवस्तुस्थितेषु सति गृह–निर्माणादिकं न करणीयम्। अतः भूमिकायाः = भूमेः, शोधनं = संशोधनं, कार्यं = करणीयम्।

सरलार्थ– वास्तुशास्त्र के आचार्य नौ प्रकार से विभक्त भूमि में कथित विधि के द्वारा कोष्ठकों में अक्षर विन्यास करके प्रश्नकर्त्ता को क्रम से किसी भी देवता, वृक्ष, और फल का नाम लेने के लिए कहते हैं। तत्पश्चात् भूस्वामी के मुख से जो शब्द निकले उसके प्रथम अक्षर को ग्रहण करके वह शब्द जिस प्रकोष्ठ में हो, उसके अनुसार भूमि पर उसकी निर्दिष्ट दिशा में शल्याशल्य का तथा फलाफल की विवेचना करनी चाहिए। यदि प्रश्नकर्त्ता के मुख से अ वर्ग के अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, लृ वर्णों में किसी भी वर्ण का आद्यक्षर युक्त शब्द की उत्पत्ति हो तो पूर्व दिशा में शल्य है, ऐसा कहना चाहिए। यदि प्रश्नकर्त्ता के मुख से क, ख, ग, घ, ङ इत्यादि कवर्ग उच्चरित हो, तो अग्निकोण में शल्य है, ऐसा कहना चाहिए। तदुपरान्त यदि प्रश्नकर्त्ता के मुख से च, छ, ज, झ, ञ इत्यादि चवर्ग उच्चरित हो, तो दक्षिण दिशा में शल्य है, ऐसा निर्देश करना चाहिए। यदि भूमि के स्वामी के मुख से ट, ठ, ड, ढ, ण इत्यादि टवर्ग उच्चरित हो, तो

नैऋत्य दिशा में अस्थि (शल्य) है, ऐसा फलादेश कहना चाहिए। यदि गृहनिर्माण कर्त्ता के मुख से ए, ऐ, ओ, औ उच्चरित हो तो पश्चिम दिशा में शल्य है, ऐसा जानना चाहिए। यदि गृहस्वामी के मुख से त, थ, द, ध, न इत्यादि में से कोई भी वर्ण उच्चरित हो, तो वायव्य कोण में शल्य को जानना चाहिए। यदि प्रश्न समय में प्रश्न करने वाले के मुख से श, ष, स, ह वर्णों में से किसी भी वर्ण का उच्चारण पहले हो, तो उत्तर दिशा में शल्य बताना चाहिए। यदि प्रश्नकाल में भूस्वामी के मुख से प, फ, ब, भ, म इत्यादि पवर्गों में से कोई वर्ण पहले आये तो ईशान कोण में शल्य को जानना चाहिए। प्रश्न समय में यदि प्रश्नकर्त्ता के मुख से य, र, ल, व में से किसी भी वर्ण का उच्चारण पहले हो तो भूखण्ड के मध्य भाग में शल्य है, ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार शल्य का ज्ञान करके भूमि को संशोधित करने के उपरान्त उस संशोधित भूमि पर गृह निर्माण का कार्य करना चाहिए।

चक्र

ईशान कोण प, फ, ब, भ, म	पूर्व दिशा अ, इ, उ, ऋ, लृ	अग्निकोण क, ख, ग, घ, ङ
उत्तर दिशा श, ष, स, ह	मध्य भाग य, र, ल, व	दक्षिण दिशा च, छ, ज, झ, ञ
वायव्य कोण त, थ, द, ध, न	पश्चिम दिशा ए, ऐ, ओ, औ	नैर्ऋत्य कोण ट, ठ, ड, ढ, ण

अभ्यास प्रश्न–3

अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें–

प्र0 1 पकार से किस दिशा का बोध होता है?

प्र0 2 अकार से किस दिशा में शल्य का ज्ञान होता है?

प्र0 3 तकार से किस कोण में शल्य को जानना चाहिए?

प्र0 4 चकार किस दिशा का द्योतक है?

1.3.4 ज्योतिर्निबन्ध में वर्णित शल्यानयन–प्रकार–

भूगर्भ से अस्थिप्रभृति शल्य को निकालने के पश्चात् भूखण्ड के ऊपर निर्माण कार्य करना चाहिए ऐसा वास्तुविज्ञों का मत है। अतः अनेक प्रकार से शल्यानयन की प्रविधि वास्तुशास्त्र के मानक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। हम लोग यहाँ ज्योतिर्निबन्ध ग्रन्थ में वर्णित शल्यानयन की विधि पर प्रकाश डालेंगे।

अ–क–च–ट–त–व–य–श– हपया वर्णाः पूर्वादिमध्यान्ताः।
शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाशः।।
पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत्।
सार्धहस्त प्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत्।।
आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये।
राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते।।
याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटिसंस्थितम्।
नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः।।
नैऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले।
शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम्।।
तः प्रश्ने पश्चिमायान्तु शिशोः शल्यं प्रजायते।
सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे।।
वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे।
कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःखस्वप्नं दर्शनं सदा।।
उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः।
तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि।।
ऐशान्यां दिशि शः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः।
तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः।
हपया मध्यमे कोष्ठे वक्षो मात्रे भवेदधः।
नृकपालं कचां भस्मं लोहं तत्कुलनाशकृत्।।

अन्वयः– अ क च ट त प य श हपया वर्णाःपूर्वादिमध्यान्ताः (स्थाप्याः), इह (वर्णाः), शल्यकरा (भवन्ति), अन्ये न, शल्यगृहे निवसतां प्राणिनां (नाशः) भवेत्।

यदि (प्रश्ने) पृच्छायां अः वर्णो भवेत् तदा प्राच्यां सार्द्धहस्तप्रमाणेन नरशल्यं स्यात् तच्च मानुषमृत्यु कृद् (भवेत्)।

यदि प्रश्ने कः वर्णो भवेत् तदा आग्नेय्यां दिशि करद्वये खरशल्यं भवेत् तत्र निवासे राजदण्डः स्यात् एवमत्र भयं नैवं निवर्तते।

यदि प्रश्ने चः वर्णः स्यात्तदा याम्यायां दिशि आकटिसंस्थितं नरशल्यं भवेत्। तच्छल्यं चिररोगतः गृहेशस्य मरणं कुर्यात्।

यदि प्रश्ने टः वर्णो भवेत्तदा नैर्ऋत्यां दिशि सार्धहस्तादधस्तले शुनास्थि जायते। तच्च बालानां मृतिं जनयेत्।

यदि प्रश्ने तः वर्णः स्यात्तदा पश्चिमायां तु सार्धहस्ते शिशोः शल्यं प्रजायते। तत्र वासे गृहस्वामी सदा गृहे न तिष्ठति।

यदि प्रश्ने पः वर्णो भवेत्तदा वायव्यां दिशि चतुर्हस्तमिते तुषाङ्गारश्च स्यात्। तच्च मित्रनाशं कुर्वन्ति दुःस्वप्नं दर्शनं च कुर्वन्ति।

यदि प्रश्ने यः वर्णः स्यात्तदा उदीच्यां (उत्तरस्यां) दिशि कटेरधः विप्रशल्यं भवेत्। तच्छीघ्रं हि कुबेरसदृशस्य निर्धनत्वाय (भवेत्)।

यदि प्रश्ने शः वर्णो भवेत्तदा ऐशान्यां दिशि सार्धहस्तप्रमाणेन गोशल्यं स्यात्। तत् गृहमेधिनः गोधनस्य नाशाय जायते।

यदिप्रश्ने ह–प–य वर्णाः स्युः तदा मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे नृकपाल कचां भस्म लोहं च अधः भवेत्। कुलनाशकृत् (भवेत्)।

भावार्थः– प्रश्नकर्तुः प्रश्नस्य प्रथमाक्षरानुसारमेव पूर्वादिदिक्षु मध्ये च शल्यं निर्णीयते। शल्ययुते गृहे निवासेन मृत्युर्भवति। प्रथमोच्चारिते अकारो पूर्वस्यां सार्धहस्तमिते मनुष्यशल्यं मृत्युकरं भवति। कवर्गे च आग्नेय्यां हस्तद्वयमिते गर्दभास्थि राजदण्डं सूचयति। चवर्गे दक्षिणस्यां कोष्ठमिते मानवास्थि सन्तानहानिं वदेत्। तवर्गे पश्चिमायां सार्धहस्तमिते बालास्थि गृहस्वामिनः प्रवासं सूचयति। पवर्गे वायव्यां चतुर्हस्तमिते तुषाङ्गारश्च मित्रनाशं दुःस्वप्नश्च सूचयति। यवर्गे उत्तरस्यां काष्ठमिते ब्राह्मणास्थि गोनाशं सूचयति। ह–प–य वर्गेषु मध्ये हृदयमिते मानवकपालबालास्थिभस्मलोहानि कुटुम्बहानि सूचयति।

सरलार्थ–

ज्योतिर्निबन्ध ग्रन्थ के अनुसार प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का जो प्रथम अक्षर हो उसी के अनुसार पूर्व आदि दिशा से लेकर मध्य तक शल्य का निर्णय किया जाता है। शल्ययुक्त घर में निवास करने से नाश होता है। यदि प्रश्न में अ वर्ग के वर्ण पहले उच्चरित होते हों तो पूर्वदिशा में डेढ़ (1½) हाथ नीचे बालक की हड्डी है, ऐसा निर्देश करना चाहिए। फल– गृहपति सदैव परदेश में रहेगा।

यदि प्रश्न में 'क' वर्ग के वर्ण पहले आये तो भूखण्ड के अग्निकोण में दो हाथ नीचे गधे का शल्य है, ऐसा फलादेश करें। फल– राजदण्ड।

यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न में 'च' वर्ग के वर्ण पहले आये तो दक्षिण दिशा में कटि तुल्य नीचे मनुष्य का शल्य है। फल– सन्तानहानि।

यदि ट वर्ण पहले हो, तो नैऋत्यकोण में सार्धहस्त प्रमाण की शुन की अस्थि भूमितल में होगी। फल– बालमृत्यु।

यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न में प्रथमाक्षर 'त' वर्ग के वर्ण हो तो पश्चिम दिशा में डेढ़ (1½) हाथ नीचे बालक की हड्डी है, ऐसा निर्देश करना चाहिए। फल– गृहपति सदैव परदेश में रहेगा।

यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न में प्रथमाक्षर 'प' वर्ग के वर्ण हो तो वायव्यकोण में चार हाथ नीचे भूसा और कोयला है, ऐसा जानना चाहिए। फल– मित्रनाश, दुःस्वप्न।

यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न में आद्य अक्षर 'य' वर्ग हो तो उत्तर दिशा में कटितुल्य नीचे ब्राह्मण की हड्डी है, ऐसा ज्ञात होता है। फल– गोधन का विनाश।

यदि प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न में आद्य अक्षर ह, प, य वर्ण हो तो भूमि के मध्य में छाती भर नीचे मनुष्य की खोपड़ी, बाल, भस्म, लोहा आदि है। फल– कुलनाश।

अभ्यास प्रश्न– 4

अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें–

प्र0 1 पूर्वदिशा में शल्य प्राप्त होने पर क्या फल होगा?

प्र0 2 पश्चिम दिशा में शल्य का फल बताएँ?

प्र0 3 भूमि के मध्य में यदि शल्य हो, तो किस वर्ण का उच्चारण प्रश्नकर्त्ता द्वारा किया गया?

प्र0 4 अग्निकोण में प्राप्त शल्य का फल क्या होगा?

1.3.5 बृहत्संहिता के अनुसार शल्यज्ञान–

कण्डूयते यदङ्गं गृहभर्तुर्यत्र वाऽमराहुत्याम्।
अशुभं भवेन्निमित्तं विकृतेर्वाग्नेः सशल्यं तत्।।

हवनकाल या प्रश्नकाल में गृह का स्वामी अपने जिस अङ्ग को खुजलावे, वास्तु नर के उसी अङ्गस्थान में शल्य कहना चाहिए। अथवा जिस देवता की आहुति देने के समय अशुभ निमित्त (छींक, रोना, चिल्लाना, अपान वायु–त्याग या अशुभ शब्द श्रवण) हो या अग्नि में विकार (विस्फुलिङ्ग, शब्द के साथ दुर्गन्ध) उत्पन्न हो, तो उस देवता के स्थान में शल्य कहना चाहिये।

फल–

उपर्युक्त शल्य यदि काष्ठ का हो तो धनहानि, हड्डी का हो तो पशुओं को पीड़ा और रोगभय, लोहे का हो तो शस्त्र का भय, कपाल का केश हो तो मृत्यु, कोयले का हो तो चोरभय एवं भस्म का हो तो सदा अग्निभय होता है। साथ ही सोना और चाँदी के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का शल्य वास्तु पुरुष के मर्मस्थान में स्थित हो तो अत्यन्त अशुभ होता है। यदि धान्यों की भूसी मर्मस्थान या किसी अन्य स्थान में हो तो वह धन के आगमन को अवरूद्ध करता है। इसी प्रकार नागदन्त यदि मर्मस्थान में अवस्थित हो तो दोष उत्पन्न करने वाला होता है, परन्तु वही नागदन्त यदि मर्मस्थान से अतिरिक्त स्थान में अवस्थित हो तो शुभ होता है। इस प्रकार शुभाशुभ ज्ञान हमें करना चाहिए।

अन्य प्रकार–

आधे बने या सम्पूर्ण बने हुये गृह में प्रवेश करता हुआ कारीगर आगे कथित चिह्नों को देखे की गृहस्वामी कहाँ पर स्थित है और किस अङ्ग को स्पर्श कर रहा है? उस समय दीप्त दिशा में स्थित पक्षीगण कठोर शब्द करते हों तो जिस स्थान पर गृहपति खड़ा हो उसके नीचे तथा जिस अङ्ग को गृहपति ने स्पर्श किया हो, तत्तुल्य अङ्ग की हड्डी कहनी चाहिये। उदयकाल से एक–एक प्रहर तक पूर्व में तत्पश्चात् क्रमशः द्वितीय प्रहर तक आग्नेय कोण में

तृतीय प्रहर तक दक्षिण में एवं सायंकाल तक नैऋत्य कोण में तत्पश्चात् रात्रि के प्रथम प्रहर तक पश्चिम में, द्वितीय प्रहर तक वायव्य कोण में, तृतीय प्रहर तक उत्तर में और रात्रि के चतुर्थ प्रहर तक ईशान कोण में सूर्य रहता है। जिस दिशा का सूर्य ने परित्याग कर दिया हो वह 'अङ्गरिणी', जिसमें स्थित हो वह दीप्त, जिसमें जाने वाला हो वह धूमित और शेष पाँच दिशायें शान्त कहलाती हैं। जैसे कि उदय से प्रथम प्रहर तक ईशान कोण अङ्गारिणी, पूर्व दिशा दीप्त, आग्नेय कोण धूमित और शेष पाँच दिशायें शान्तसंज्ञक होती हैं। यथा–

अर्द्धनिचितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि।
अवलोकयेद् गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम्।।
रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवम्।
संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन् देशोऽस्थि निर्देश्यम्।।

शकुन देखने के समय यदि दीप्त दिशा की तरफ मुख करके हाथी, घोड़ा, कुत्ता आदि जीव बोलें तो जिस स्थान पर गृहस्वामी स्थित रहता है, उसके नीचे उन जीवों के उसी अङ्ग की हड्डी होनी चाहिये, जिस अङ्ग का गृहपति स्पर्श कर रहा है। जैसे–

शकुनसमयेऽथवाऽन्ये हस्त्यश्वश्वादयोऽनुवाशन्ते।
तत्प्रभवमस्थि तस्मिंस्तदङ्गसम्भूतमेवेति।।

अभ्यास प्रश्न– 5 (i)

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें–

प्र0 1 सूर्य जिस दिशा में स्थित हो उसकी कौन सी संज्ञा होती है?

प्र0 2 सूर्य जिस दिशा में प्रवेश करने वाला हो उसकी संज्ञा क्या होगी?

प्र0 3 द्वितीय प्रहर में सूर्य किस दिशा में होता है?

प्र0 4 रात्रि के प्रथम प्रहर में सूर्य की दिशा बताएँ?

बहुविकल्पीय प्रश्न– 5 (ii)

प्र0 1 काष्ठ के शल्य से होता है?

(अ) धन हानि (ब) पशुपीड़ा (स) रोगभय (द) शस्त्र भय

प्र0 2 किसके शल्य से मृत्युभय उत्पन्न होता है?

(क) केश शल्य (ख) काष्ठ शल्य (ग) लौह शल्य (घ) अस्थि शल्य

प्र0 3 किसके शल्य से चौर भय उत्पन्न होता है?

(क) लौह शल्य (ख) अङ्गार शल्य (ग) अश्म शल्य (घ) काष्ठ शल्य

1.4 सारांश –

भारतीय वास्तु भौतिकदृढ़ता, आध्यात्मिकता, आदिदैविकता, वास्तुपुरुष परिकल्पना से अनुप्राणित दर्शन, जीवनमूल्य परक शिक्षा, धार्मिक वास्तु की भव्यता, तथा सुदृढ़ निर्माण–परिकल्पना आदि से परिपुष्ट है। वास्तुशास्त्र मानव जीवन का सर्वाधिक उपयोगी और व्यावहारिक शास्त्र है। वस्तुतः वास्तुकला गृहनिर्माण की कला है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को सुखमय समृद्धि, मान–सम्मान से युक्त, सुरक्षित एवं शान्तिमय बनाना चाहता है। अतः इन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए जिन–जिन उपकरणों की आवश्यकता होती है उन सबमें महत्त्वपूर्ण स्थान गृह निर्माण का है। चारों वर्णों के भरण–पोषण का कार्य गृहस्थ का ही होता है।

अतः गृहस्थ को वास्तुशास्त्र सम्मत गृह या भवन का निर्माण करना चाहिए। वास्तुशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों में शल्यशोधन का सिद्धान्त भूमि के शल्यदोष के निवारण की एक विधि है। गुणवत्ता युक्त भूमि पर गृह निर्माण तथा शल्ययुक्त भूमि के अशुभ परिणामों से बचाव के लिए शल्यज्ञान तथा निष्कासन आवश्यक है। विभिन्न वास्तुशास्त्र के मानक ग्रन्थों के आधार पर हमने प्रस्तुत इकाई में शल्यनिष्कासन की विधि का अध्ययन किया। प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न के आधार पर हम चयनित भूखण्ड में नव निर्माण के पूर्व शल्य का ज्ञान करके आसानी से उसका निष्कासन कर सकते हैं। शल्योद्धार करने के लिए शल्य–ज्ञान की विधि को जानना आवश्यक है। वस्तुतः यह खुदाई के बिना असम्भव है और पूरे भूखण्ड की खुदाई भी असम्भव नहीं, तो कम से कम कठिन अवश्य है। अतः इस दुस्साध्य कार्य को सरल बनाने हेतु मनीषियों ने सरलतम विधि से इसका प्रतिपादन किया है। शल्य रहित भूखण्ड पर शास्त्र सम्मत नियमानुसार विचारोपरान्त गृह का निर्माण शुभप्रद होता है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली–

शल्य– अस्थि (हड्डी), कील, काष्ठ, खर्पर, भस्मादि जो भी भूमि के अन्दर दबे पड़े हैं।

अंगार– कोयला, काष्ठ– लकड़ी, अधिपति– स्वामी, हस्ती– हाथी, अश्व– घोड़ा, दीप्त– प्रकाशित, दिक्– दिशा, आद्य– प्रथम, दारु– लकड़ी, सार्ध– अर्धसहित, सार्द्धहस्त– डेढ़ हाथ, खर– गदहा, कटि– कमर, द्विज– ब्राह्मण, गो– गाय, ऋक्ष– भालू, नर– मनुष्य, कपाल– सिर, शिशु– बालक, उन्माद– पागलपन, क्षिति– पृथ्वी, षष्टि– साठ।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

अभ्यास प्रश्न– 1 की उत्तरमाला

1. 70 अङ्गुल 2. 60 अङ्गुल 3. भू संशोधन 4. स्त्री–पुरुष की मृत्यु

अभ्यास प्रश्न– 2 की उत्तरमाला

1. पूर्व 2. शुभ 3. ईशान 4. गाय

अभ्यास प्रश्न– 3 की उत्तरमाला

1. ईशान 2. पूर्व 3. वायव्य 4. दक्षिण

अभ्यास प्रश्न– 4 की उत्तरमाला

1. मनुष्य की मृत्यु 2. गृहपति सदैव परदेश में रहेगा

3. ह, प, य 4. राजदण्ड

अभ्यास प्रश्न– 5 (i) की उत्तरमाला

1. दीप्त 2. धूमित 3. आग्नेय 4. पश्चिम

अभ्यास प्रश्न– 5 (ii) की उत्तरमाला

1. अ 2. क 3. ख

1.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बृहत्संहिता, वाराहमिहिर प्रणीत– भट्टोत्पलवृत्ति सहित, समपादक– पं0 अच्युतानन्द झा,(2014), चौखम्बा विद्याभवन, प्रकाशन, वाराणसी
2. विश्वकर्मप्रकाश, सम्पादक– महर्षि अभय कात्यायन, (2019), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

3. वास्तुराजबल्लभ, श्रीमण्डनसूत्रधारकृत, सम्पादक– श्री अनूप मिश्र, (सं0 2053), मास्टर खेलाडीलाल प्रकाशन, वाराणसी
4. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी।
5. वास्तु रत्नाकर, सम्पादक– विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज (2012), वाराणसी

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, संपादक– कमलाकान्त ठाकुर 'मैथिल', भारतीय विद्या प्रकाशन (2019), वाराणसी
2. सराङ्गणसूत्रधार, श्री भोजदेव प्रणीत, संपादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2017), वाराणसी
3. मयमतम्, मयमुनि कृत, सम्पादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस (2019), वाराणसी
4. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल प्रणीत, सम्पादक– आचार्य कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (1999), वाराणसी
5. मुहूर्तमार्तण्ड, श्रीनारायण दैवज्ञ विरचित, व्याख्याकार– डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र, कृष्णदास अकादमी (1997), वाराणसी
6. गृहवास्तुप्रदीप, डॉ0 शैलजा पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी
7. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, (2005), वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न–

प्र0 1 महाज्योतिर्निबन्धोक्त शल्यनिष्कासन विधि एवं उसके फल विचार पर प्रकाश डालें।

प्र0 2 बृहत्संहितोक्त शल्यज्ञानप्रकार का विस्तृत विवेचना करें।

प्र0 3 वास्तुराजवल्लभोक्त शल्यानयन विधि का उल्लेख करें।

प्र0 4 अ, क, च, ट इत्यादि वर्णों के आधार पर शल्यज्ञान की विधि को प्रतिपादित करें।

इकाई - 2 गृह मेलापक

2.1 प्रस्तावना –

भारतीय विद्याओं में ज्यौतिष, आयुर्वेद, योग एवं तन्त्र आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनकी प्रत्यक्ष प्रतीति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ज्योतिषशास्त्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग वास्तुशास्त्र है। वास्तुशास्त्र का क्षेत्र अति विस्तृत है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र– स्वास्थ्य, शिक्षा, सन्तान, सम्पत्ति, सुख, सम्मान, सुहृद्, आजीविका एवं आय व्ययादि पर यह प्रकाश डालता है। यही कारण है कि इसका प्रचार–प्रसार सर्वत्र है।

सांसारिक सुखों या पारलौकिक सफलताओं में जिस प्रकार विवाह का महत्त्व सर्वोपरि है, ठीक उसी प्रकार गृहस्थ जीवन में सुन्दर भवन निर्माण के पूर्व गृह में निवास हेतु तथा गृह प्रवेश के बाद शारीरिक, मानसिक आदि दुःखों के शमनार्थ एवं सफलतापूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के लिए वास्तुशास्त्र के महनीय आचार्यों द्वारा उपदिष्ट नियमों के अनुसार गृहमेलापक का महत्त्व है।

अतः उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति एवं सफल लोक जीवन संचालन की दृष्टि से वास्तुशास्त्र में गृहमेलापक का विधान किया गया है जिससे भावी दाम्पत्य जीवन में अनुकूलता बनी रहे। प्रस्तुत इकाई में हम 'गृहमेलापक' शीर्षक का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य–

- मेलापक में नामराशि की प्रधानता को बता सकेंगे।
- गृह नक्षत्र, योनि, ग्रहमैत्री विचार में प्रवीण होंगे।
- गृहनाडी विचार में दक्ष होंगे।
- वास्तुशास्त्रीय अवकहडा चक्र को जान लेंगे।
- गृहमेलायक की उपयोगिता एवं महत्त्व को समझा सकेंगे।

2.3 गृहमेलापक : सामान्य परिचय

मानव जीवन के साथ ही धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष आदि पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि की कामना उत्पन्न होती है। भारतीय वास्तुशास्त्र के आचार्यों ने जिसे धर्म या कर्तव्य कह कर परिभाषित किया, उसकी विधि के विषय में स्पष्ट प्रमाण की अनुपलब्धता परिणाम

को कदापि प्रभावित नहीं करती। हम उस विधि या प्रक्रिया का पता लगाकर उसे वैज्ञानिक आधार के रूप में परिभाषित करते हैं। वास्तुशास्त्र सामाजिक विज्ञान की भाँति समाज को एक दिशा–निर्देश प्रदान करता है, जिसके द्वारा स्वस्थ समाज के निर्माण में एक सहायता प्राप्त होती है। वास्तुशास्त्रीय परम्परा पूर्णतया वैज्ञानिक विधि पर आधारित है। वास्तुशास्त्र का समाज के साथ सीधा सम्बन्ध देखकर आचार्यों ने इसके विकल्पों को प्रचुर मात्रा में समाहित किया। मेलापक का अभिप्राय मिलाने से है अर्थात् गृहस्वामी की राशि तथा गृह की राशि का आपसी मिलान की परिकल्पना ही गृहमेलापक विचार के अन्तर्गत समाहित की गई है। गृहमेलापक में नामराशि की प्रधानता, राशिज्ञान, गृहनक्षत्र का विचार, योनि–विचार, गृहमैत्री–विचार, नाडीविचार, तारा–विचार इत्यादि विषयों को विभिन्न वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिपादित किया गया है। विवाह मेलापक के समान ही हम गृहमेलापक का भी विचार करते हैं। विवाह में जन्मराशि से मेलापक का विचार किया जाता है जबकि गृहमेलापक में नामराशि की प्रधानता है।

2.3.1 गृहस्वामी की नामराशि के साथ गृहनक्षत्र की राशि का मेलापक

जिस प्रकार से विवाह के पूर्व वर–कन्या की जन्मराशियों का मेलापक किया जाता है, उसी प्रकार राशिकूट, नक्षत्रकूट आदि सबका विचार गृहस्वामी की नामराशि तथा गृह की राशि से करना चाहिये। यथा–

राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्।

देश, ग्राम, गृह, ज्वर, व्यवहार, दानकार्य, मन्त्रप्रयोग, नौकरी में कांकिणी विचार, वर्गशुद्धि, संग्राम और पुनर्भूमेलापक में नामराशि से ही विचार करना चाहिए। जैसे–

देशग्रामगृहज्वरव्यवहृतिपु दाने मनौ।
सेवाकाकिणीवर्गसङ्गरपुनर्भूमेलके नामभम्।।

यदि दो देशों, राज्यों, ग्रामों अथवा नगरों के मध्य क्रीडा आदि विविध विषयों का आयोजन हो, तो उन दोनों के मध्य कौन विजयश्री को प्राप्त होगा, ऐसा विचार करते समय उन दोनों देशों के प्रसिद्ध नाम के प्रथम अक्षरों से जो नक्षत्र समुत्पन्न हो तथा नक्षत्र के अनुसार जो राशि प्राप्त हो, उसी राशि से सर्वदा मेलापक का विचार करना चाहिए। इसी प्रकार से ज्वर से निदान में, द्यूतक्रीडा में, दानकार्य में, दीक्षाकर्म में, मन्त्र में, कार्यक्षेत्र में

काकिणी विचार के समय, संग्राम में, पुनर्विवाह में हमेशा नामराशि से ही विचार करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उक्त सभी कार्य में जन्मराशि को कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। अतः गृहारम्भ से पूर्व मेलापक का सम्यक्तया विचार करना गृहपति के लिए शुभफलदायी होता है।

राशिज्ञान–

वास्तुशास्त्रीय राशिचक्र में राशियों एवं नक्षत्रों का समायोजन भिन्न प्रकार से होता है। प्रचलित राशिचक्र का विभाजन अश्विन्यादि गणना से सवा दो नक्षत्रों के अनुपात से किया गया है, परन्तु वास्तुशास्त्रीय अवकहड़ाचक्र के विचार में पूरे–पूरे नक्षत्रों के साथ बारह राशियों का समन्वय किया गया है। इसी आधार पर गृह के साथ मेलापक में गृहस्वामी की राशि का विचार करना चाहिये। यहाँ पञ्चाङ्गों में दिये गये अवकहड़ाचक्र के अनुसार उसकी राशि नहीं देखना चाहिये। गृहमेलापक में अश्विनी, भरणी, कृत्तिका इन तीनों नक्षत्रों को मिलाकर मेष राशि होती है। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी इन तीनों नक्षत्रों को मिलाकर सिंह राशि तथा मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा को मिलाकर धनुराशि होती है। शेष राशियों में दो–दो नक्षत्र आते हैं। यथा–

अश्विन्यादि त्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम्।
मूलादित्रितयश्चापे शेषराशिर्द्विके द्विके।।

मेलापक के समय यह ध्यान रहे कि इसमें जन्मराशि का प्रयोजन नहीं है, यहाँ तो इस विशेष अवकहड़ाचक्र के आधार पर ही नामराशि का विचार करना चाहिये तथा अधोलिखित नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. स्वरों में ह्रस्व तथा दीर्घ का भेद इस चक्र में नहीं होता है। जैसे कि अनन्तराम तथा आदेश कुमार दोनों का नक्षत्र कृत्तिका ही होगा तथा राशि मेष होगी।
2. मात्राओं में ह्रस्व–दीर्घ में भेद नहीं है, अतः चुन्नीलाल तथा चूडामणि इन दोनों का नक्षत्र अश्विनी होगा तथा राशि मेष होगी।
3. ऋषिकुमार की राशि वृष होगी।
4. व–ब, वि–बि, बु–वु इनमें कोई भेद नहीं होता है।
5. 'श तथा 'स अक्षरों में कोई भेद नहीं मानकर राशि का विचार करना चाहिये। इसके अनुसार शालिनी तथा सारिका के नाम का नक्षत्र शतभिषा तथा राशि कुम्भ होगी।

इस अवकहड़ाचक्र के अनुसार मेष–सिंह–धनु इन तीन राशियों में नौ नक्षत्र होते हैं, शेष बची हुई नौ राशियों में शेष 18 नक्षत्रों का समायोजन हो जाता है।

विशेष–

1. घ–घा–घि–घी–घु–घू–घे–घै इन अक्षरों का आर्द्रा नक्षत्र तथा मिथुन राशि है। छ, छा, छि, छी, छु, छू, छे भी इसी में है।
2. थ–था–थि–थु–थू–थे–थै–थो–थौ तथा झ–झा–झि–झी–झु–झू–झे–झै– झो–झौ ये उत्तराभाद्रपद नक्षत्र तथा मीनराशि के अक्षर हैं।
3. ठ–ठा–ठि–ठी–ठु–ठू–ठे–ठै–ठो–ठौ ये अक्षर हस्त नक्षत्र तथा कन्याराशि में हैं।
4. फ–फा–फि–फी–फु–फू–फे–फै–फो–फौ तथा ढ–ढा–ढि–ढी–ढु–ढू–ढे– ढै–ढो–ढौ ये अक्षर पूर्वाषाढ़ा तथा धनुराशि में हैं।

वास्तुशास्त्रीय अवकहड़ा–चक्र

1. मेष	1. अश्विनी 2. भरणी 3. कृतिका	चू–चे–चो–ला लो–लू–ले–लो अ–इ–उ–ए
2. वृष	4. रोहिणी 5. मृगशिरा	ओ–वा–वि–वू (औ–बा–बी–बू) बे–बो–का–की (बे–बो–का–कि)
3. मिथुन	6. आर्द्रा 7. पुनर्वसु	कु–घ–ङ–छ के–को–हा–ही
4. कर्क	8. पुष्य 9. आश्लेषा	हु–हे–हो–डा डि–डू–डे–डो
5. सिंह	10. मघा 11. पूर्वाफाल्गुनी 12. उत्तराफाल्गुनी	मा–मी–मू–मे (म–मि–मु–मै) मो–टा–टि–टु टे–टो–पा–पी
6. कन्या	13. हस्त 14. चित्रा	पू–ष–ण–ठ पे–पो–रा–रि
7. तुला	15. स्वाती 16. विशाखा	रु–रे–रो–ता ती–तू–ते–तो
6. वृश्चिक	17. अनुराधा 18. ज्येष्ठा	ना–नी–नु–ने वो–या–यि–यु
9. धनु	19. मूल 20. पूर्वाषाढ़ा 21. उत्तराषाढ़ा	ये–यो–भा–भी भु–ध–फ–ढ भे–भो–जा–जि
10. मकर	22. श्रवण 23. धनिष्ठा	खा–खी–खु–खे–खो ग–गी–गु–गे

11. कुम्भ	24. शतभिषा 25. पूर्वाभाद्रपद	गो–सा–सि–सु (शा–शि–शु) सो–सो–द–दी
12. मीन	26. उत्तराभाद्रपद 27. रेवती	दू–थ–झ–ञ दे–दो–च–ची

अशुभ राशिकूट–

यदि गृहस्वामी तथा गृह की राशि में द्विर्द्वादश सम्बन्ध हो तो निर्धनता होती है। यदि उनमें त्रिकोण (5–9) सम्बन्ध हो तो सन्तान हीनता होती है अर्थात् सन्तति की हानि पहुँचाते हैं। यदि दोनों षडष्टक (6,) का सम्बन्ध हो, तो मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट होता है। इनसे भिन्न प्रकार के सम्बन्ध धनदायक होते हैं। जैसे–

नैस्वं द्विर्द्वाशे नूनं त्रिकोणे ह्यनपत्यता।
षडष्टके नैधनं स्याद् व्यत्ययेन धनं स्मृतम्।।

राशिकूट–चक्र

1 मेष	2 वृष	3 मिथुन	4 कर्क	5 सिंह	6 कन्या	7 तुला	8 वृश्चिक	9 धनु	10 मकर	11 कुम्भ	12 मीन	गृहस्वामी की नामराशि
2–12	3–1	4–2	5–3	6–5	7–5	8–6	9–7	10–8	11–9	12–10	1–11	द्विर्द्वादश राशि
9–5	10–6	11–7	12–8	1–9	2–10	3–11	4–12	5–1	6–2	7–3	8–4	नवपञ्चम राशि
6–8	7–9	8–10	9–11	10–12	11–10	12–2	1–3	2–4	3–5	4–6	5–7	षडष्टक राशि
7	8	9	10	11	12	1	2	3	4	5	6	समसप्तक राशि
4–10	5–11	6–12	7–1	8–2	9–3	10–4	11–5	12–6	1–7	2–8	3–9	चतुर्थ–दशम राशि
3–11	4–12	5–1	6–2	7–3	8–4	9–5	10–6	11–7	12–8	1–9	2–10	त्रिरेकादश राशि

गृहनक्षत्र विचार–

अश्विन्यादि से रेवती पर्यन्त सत्ताइस नक्षत्र होते हैं। गृहनक्षत्र विचार प्रकरण में कृत्तिका से आरम्भ कर नव–नव नक्षत्र से एक चक्र का निर्माण करते हैं। उस चक्र में

तीन–तीन नक्षत्रों को स्थापित कर शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए। सर्वप्रथम कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्रों को चक्र में लिखकर इन तीनों नक्षत्रों का फल 'उद्वेग' लिखें। अतः इन नक्षत्रों में गृहारम्भ करने से गृहवास कर्त्ता को मनोद्वेग होता है। इसी प्रकार यदि आर्द्रा–पुनर्वसु–पुष्य नक्षत्रों में कोई भी एक गृहनक्षत्र हो, तो वास कर्त्ता को पुत्र की प्राप्ति होती है। उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा नक्षत्रों में शोक से युक्त होता है तथा स्वाती विशाखा अनुराधा नक्षत्रों में शत्रु का भय प्राप्त होता है। ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों मं राजभय होता है। इस विधि से आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में से किसी भी एक नक्षत्र में गृहारम्भ हो, तो गृहवास कर्त्ता को धन की प्राप्ति होती है। उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा नक्षत्रों में मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट होता है। शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में सुख प्राप्त होता है। इसी तरह रेवती, अश्विनी, भरणी नक्षत्रों में गृहवास करने वाले को परदेश वास कहना चाहिए। अतः नवविध नक्षत्रों का भेद सम्यक्तया जानने के बाद ही गृहकार्य करना चाहिए।

यथा–

त्रिभिस्त्रिभिर्वेश्मनि कृत्तिकाद्यैरुद्वेगप्राप्तिधनाप्तिशोकम्।
शत्रोर्भयं राजभयं च मृत्युः सुखं प्रवासश्च नवप्रभेदाः।।

नक्षत्र–चक्र

गृह नक्षत्र	कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा	आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य	आंश्लेषा मघा पूर्वाफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी हसत चित्रा	स्वाती विशाखा अनुराधा	ज्येष्ठा मूल पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा श्रवण धनिष्ठा	शतभिषा पूर्वाभाद्रपद उत्तराभाद्रपद	रेवती अश्विनी भरणी
फल	उद्वेग	पुत्र प्राप्ति	धन प्राप्ति	शोक	शत्रुभय	राजभय	मृत्यु	सुख	प्रवास

अभ्यास प्रश्न–1

अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें–

प्र0 1 वास्तुशास्त्र में सिंहराशि में कितने नक्षत्र स्वीकृत हैं?

प्र0 2 एकराशि में कितने नक्षत्र चरण होते हैं?

प्र0 3 गृहस्वामी तथा गृहराशि में द्विर्द्वादश सम्बन्ध का फल क्या होगा?

प्र0 4 संतानहीनता कब होती है?

प्र0 5 कृत्तिका—रोहिणी—मृगशिरा नक्षत्र का फल लिखें।

2.3.2 गृह के साथ अन्य प्रकार से मेलापक

राशि एवं नक्षत्रों के अनुसार मेलापक के उपरान्त गृहमेलापक में गृहस्वामी एवं गृह की नाड़ी, गण, योनि, ग्रहमैत्री, वर्ण, तारा इत्यादि का भी विचार करना चाहिए। इस प्रसङ्ग में आचार्यों का कथन है कि गृहमेलापक में गृहस्वामी एवं गृह की नाड़ी एक नहीं होना चाहिये। इसका फल शुभ नहीं होता है। दोनों की तारा भी एक न हो अन्यथा रोगभयकारक होते हैं। यदि दोनों के गणों में वैर हो, तो पुत्रहानि तथा धनहानि होती है। योनिवैर में कलह तथा महान् दुःख होता है। अतः अशुभ फलों के निवारण हेतु उपरोक्त विषयों का भी मेलापक—विचार आवश्यक है।

नाड़ी विचार—

आदि, मध्य और अन्त्य भेद से नाड़ी तीन प्रकार के कहे गये हैं। नाड़ी का विचार गृहनक्षत्र तथा गृहपति के नक्षत्र के साथ किया जाता है। गृह तथा गृहपति की आदि, मध्य, अन्त्य में से कोई एक नाड़ी पड़ जाय तो उत्तम होता है। नाड़ी विचार में नक्षत्रों का क्रम सर्पाकार चलता है। सर्वप्रथम सर्पाकार चक्र का निर्माण करके अश्विनी से आरम्भ कर रेवती पर्यन्त सत्ताइसों नक्षत्रों को क्रम से स्थापित करते हैं। तदुपरान्त आदि, मध्य, अन्त्य तीन प्रकार से नाड़ी का ज्ञान नाम के आद्य अक्षर के अनुसार प्राप्त नक्षत्र के आधार पर करते हैं।

यथा—

आवृत्तिभिर्भैस्त्रिभिरश्विमाद्यं क्रमोत्क्रमात् सङ्गणयेदुडूनि।
यदेकपर्वण्युभयोश्च हर्म्यं हर्म्ये श्योर्भेऽति शुभं तदा स्यात्।।

नाड़ी–चक्र

आदि	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपद
मध्य	भरणी	मृगशिरा	पुष्य	पूर्वाफाल्गुनी	चित्रा	अनुराधा	पूर्वाषाढ़ा	धनिष्ठा	उत्तराभाद्रपद
अन्त्य	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	मघा	स्वाती	विशाखा	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	रेवती

उपरोक्त चक्र को देखकर भी हम नाड़ी का ज्ञान कर सकते हैं। जैसे– यदि गृहस्वामी का नक्षत्र अश्विनी हो तथा गृह का नक्षत्र विशाखा हो तो दोनों की नाड़ी क्या होगी? यह जिज्ञासा हो सकती है। इसका उत्तर हम सरलतापूर्वक चक्र देखकर ज्ञात कर सकते हैं। यदि गृहस्वामी का नक्षत्र अश्विनी है तो अश्विनी नक्षत्र की आदि नाड़ी है तथा गृह का नक्षत्र विशाखा है, तो इस नक्षत्र की नाड़ी अन्त्य है। अतः दोनों की नाड़ी अलग–अलग है। इस प्रकार हम नाड़ी का विचार कर सकते हैं। दोनों की नाड़ी समान नहीं होनी चाहिए। अलग–अलग नाड़ी गृहमेलापक में उत्तम माना गया है।

योनिविचार–

मुहूर्तचिन्तामणिकार रामदैवज्ञ ने नक्षत्रों के अनुसार प्राणियों की योनि का निर्धारण किया है। जैसे– अश्विनी और शततारा नक्षत्र की योनि 'अश्व' है। स्वाती और हस्त नक्षत्र की महिश योनि होती है। धनिष्ठा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र की योनि सिंह होती है। भरणी तथा रेवती की हाथी (गज), पुष्य और कृत्तिका की मेष (भेड़ा), श्रवण तथा पूर्वाषाढ़ा की वानर, उत्तराषाढ़ा और अभिजित् की नकुल (नेवला), मृगशिरा एवं रोहिणी की सर्प, ज्येष्ठा तथा अनुराधा की मृग (हिरण), मूल और आर्द्रा की श्वान (कुत्ता), पुनर्वसु तथा आश्लेषा की मार्जार (बिडाल), मघा तथा पूर्वाफाल्गुनी की मूषक (चूहा), विशाखा तथा चित्रा की व्याघ्र तथा उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभद्रपद की गौ योनि होती है। गृहमेलापक में वैर योनि वाले नक्षत्रों का परित्याग करना चाहिये। नीचे योनि मेलापक बोधक चक्र दिया जा रहा है, जिसको

देखकर सरलता से वैर योनि का ज्ञान हम कर सकते हैं–

योनि मेलापकबोधक चक्र

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
योनि	अश्व	महिष	सिंह	गज	मेष	वानर	नकुल	सर्प	हिरण	श्वान	मार्जार	मूषक	व्याघ्र	गो
नक्षत्र	अश्विनी शतभिषा	हस्त स्वाती	धनिष्ठा पूर्वाभाद्रपद	भरणी रेवती	कृत्तिका पुष्य	श्रवण पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा अभिजित्	रोहिणी मृगशिरा	अनुराधा ज्येष्ठा	आर्द्रा मूल	पुनर्वसु श्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी	विशाखा चित्रा	उ0भा0 उ0फा0
वैर योनि	महिष	अश्व	गज	सिंह	वानर	मेष	सर्प	नकुल	श्वान	हिरण	मूषक	मार्जार	गो	व्याघ्र

ग्रहमैत्री विचार

सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन सात ग्रहों तथा दो छाया ग्रह राहु एवं केतु की परिकल्पना हमारे ज्योतिषशास्त्र में की गई है। गृहमेलापक में ग्रहों के मित्र, शत्रु एवं सम का विचार करते हैं, जो कि राशियों के स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। बारह राशियों के स्वामी ये सात ग्रह– सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि हैं। इस प्रसङ्ग में हम ग्रहों के मित्रामित्र का विचार करेंगे। आचार्य रामदैवज्ञ के अनुसार– सूर्य के मङ्गल, गुरु और चन्द्रमा मित्र हैं, शुक्र और शनि शत्रु हैं तथा बुध सम हैं। चन्द्रमा के बुध, सूर्य, मित्र हैं तथा शेष ग्रह, मङ्गल, बृहस्पति, शुक्र और शनि सम हैं। चन्द्रमा का कोई भी ग्रह शत्रु नहीं है। मङ्गल के चन्द्रमा, गुरु और सूर्य मित्र, बुध, शत्रु तथा शुक्र, शनि सम हैं। गुरु के सूर्य, मङ्ल, चन्द्रमा मित्र, तथा बुध, शुक्र शत्रु और शनि सम हैं। शुक्र के बुध, शनि मित्र और चन्द्र सूर्य शत्रु एवं मङ्गल, गुरु सम हैं। शनि के शुक्र, बुध मित्र तथा सूर्य और मङ्गल शत्रु एवं गुरु सम हैं। इस प्रकार ग्रहों के मित्र, शत्रु तथा सम का विचार करते हुए गृह स्वामी तथा गृह की राशि को जानकर तदुपरान्त राशियों के स्वामी के अनुसार गृह एवं गृहस्वामी के मध्य मित्रभाव, शत्रुभाव तथा समभाव को ज्ञात कर सकते हैं। गृहमेलाप में मित्रभाव उत्तम, शत्रुभाव अधम तथा समभाव मध्यम माना जाता है। अतः शत्रुभाव का सर्वदा परित्याग करना चाहिए।

ग्रहमैत्री चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चन्द्र, मङ्गल, गुरु	सूर्य, बुध	सूर्य, चन्द्र, गुरु	सूर्य, शुक्र	सूर्य, चन्द्र, मङ्गल	बुध, शनि	बुध, शुक्र
शत्रु	शुक्र, शनि	×	बुध	चन्द्र	बुध, शुक्र	सूर्य, चन्द्र	सूर्य, चन्द्र, मङ्गल

सम	बुध	मङ्गल, गुरु, शुक्र, शनि	शुक्र, शनि	मङ्गल, गुरु, शनि	शनि	मङ्गल	गुरु

गण विचार–

देव, मनुष्य और राक्षस भेद से गण तीन प्रकार के होते हैं। अपने–अपने गणों के बीच अति उत्तम प्रीति होती है। अर्थात् देवगण का देवगण से, राक्षस गण का राक्षस गण से तथा मनुष्य गण का मनुष्यगण से उत्तम सम्बन्ध होता है। देवगण और मनुष्यगण का सम्बन्ध मध्यम होता है। राक्षसगण और मनुष्यगण का सम्बन्ध मृत्युकारक होता है। तथा देवगण और राक्षसगण के सम्बन्ध होने से अवश्य ही वैर–भाव उत्पन्न होता है। अतः गृहस्वामी के नक्षत्र तथा गृह नक्षत्र के अनुसार मेलान कर गण का ज्ञान करने के उपरान्त ही गृहारम्भ करना शास्त्रसम्मत होता है। नक्षत्रों के अनुसार हम गण का विचार करते हैं। मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, कृत्तिका, चित्रा और विशाखा नक्षत्रों का राक्षस गण होता है। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूवाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा नक्षत्रों का मनुष्य गण होता है। अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्रों का देवगण होता है। इस प्रकार हम गण विचार करते हैं।

तारा विचार–

जन्म, सम्पत्ति, विपत्ति, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र, अतिमित्र ये नौ प्रकार के तारा कहे गये हैं। गृहकर्त्ता के नाम नक्षत्र से गिनती प्रारम्भ कर इन ताराओं को ज्ञात कर सकते हैं। गृहस्वामी के नाम नक्षत्र से गृह नक्षत्र यदि पहला, दसवाँ, उन्नीसवाँ नक्षत्र हो, तो कर्त्ता का तारा जन्म तारा समझना चाहिए। इसी प्रकार यदि दूसरा, ग्यारहवाँ, बीसवाँ नक्षत्र हो, तो सम्पत्ति, तीसरा, बारहवाँ इक्कीसवाँ हो तो विपत्ति, चौथा, तेरहवाँ, बाइसवाँ हो तो क्षेम, पाँचवाँ, चौदहवाँ, तेइसवाँ हो तो प्रत्यरि, छठवाँ, पन्द्रहवाँ, चौबीसवाँ हो तो साधक, सातवाँ, सोलहवाँ, पच्चीसवाँ हो तो वध तारा, आठवाँ, सत्रहवाँ, छब्बीसवाँ हो तो मित्र तथा नौवाँ, अठारहवाँ, सत्ताइसवाँ नक्षत्र हो तो अतिमित्र द्वारा जानना चाहिए।

तारामेलाप का फल–

गृहस्वामी की राशि से गृह नक्षत्र यदि विपत्ति तारा में हो तो विपत्ति होती है। यदि प्रत्यरि तारा हो तो प्रतिकूलता उत्पन्न होती है। निधनतारा मृत्यु अथवा मृत्युतुल्य कष्ट देता है, अतः विपत्ति, प्रत्यरि तथा निधन (वध) तारा– इन तीन ताराओं को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिए।

विशेष फल यह है कि प्रत्यरि तारा में उग्रभय होता है। नामनक्षत्र से 23वाँ नक्षत्र (प्रत्यरि) विशेष रूप से मृत्युभय कारक होता है। निधनतारा स्त्री, पुत्रों के लिए कष्टप्रद होता है। यदि अज्ञानतावश इन तीन ताराओं विपत्–प्रत्यरि और निधन में गृहारम्भ हो तो दुःख–रोग एवं कष्ट होता है।

ताराबोधक चक्र (कर्त्ता के नाम नक्षत्र से गिनें)

1 जन्मतारा	2 सम्पत्तितारा	3 विपत्तितारा	4 क्षेमतारा	5 प्रत्यरितारा	6 साधकतारा	7 वधतारा	8 मित्रतारा	9 अतिमित्र तारा
1ला 10वाँ 19वाँ	2रा 11वाँ 20वाँ	3रा 12वाँ 21वाँ	4था 13वाँ 22वाँ	5वाँ 14वाँ 23वाँ	6वाँ 15वाँ 24वाँ	7वाँ 16वाँ 25वाँ	8वाँ 17वाँ 26वाँ	9वाँ 18वाँ 27वाँ

वर्णबोधक चक्र

गृहस्वामी के नाम के प्रथम अक्षर से जो वर्ण आये, उससे गृह के नक्षत्रराशि का वर्ण समान या नीचा होना शुभ है। स्वामी के वर्ण से गृह का वर्ण ऊँचा न हो।

राशियाँ	1 मेष	2 वृष	3 मिथुन	4 कर्क	5 सिंह	6 कन्या	7 तुला	8 वृश्चिक	9 धनु	10 मकर	11 कुम्भ	12 मीन
नक्षत्र	अश्विनी भरणी कृत्तिका	रोहिणी मृगशिरा	आर्द्रा पुनर्वसु	पुष्य आश्लेषा	मघा पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी	हस्त चित्रा	स्वाती विशाखा	अनुराधा ज्येष्ठा	मूल पूर्वाषाढ़ा उत्तराषाढ़ा	श्रवण धनिष्ठा	शतभिषा पूर्वाभाद्र	उत्तराभाद्रपाद रेवती
राशि एवं नक्षत्र का वर्ण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र	विप्र

2.4 सारांश–

प्रस्तुत इकाई में अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गृहमेलापक में नाम राशि की प्रधानता है। वास्तुशास्त्रीय अवकहडा चक्र जिसमें सवा दो नक्षत्र नहीं अपितु पूरे–पूरे नक्षत्रों का समायोजन किया गया है। जिसके अनुसार नामराशि तथा नक्षत्र का ज्ञान हम आसानी से कर सकते हैं। मेलापक में प्रमुख अवयव– नामराशि तथा नाम नक्षत्र हैं। इन दोनों के आधार पर हम राशिकूट, गृहनक्षत्र का विचार तथा उसके फल का विचार करके यह आसानी से निर्णय कर सकते हैं कि अमुक गृह निवास योग्य है अथवा नहीं। तदुपरान्त नक्षत्रों के आधार पर नाड़ी का विचार, गण–विचार, योनिविचार, ग्रहमैत्री विचार, तारा विचार तथा वर्णविचार इन सभी विषयों का ज्ञान तथा उसके शुभाशुभ फल का विचार सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में गृह का महत्त्व सर्वोपरि है। हम जानते हैं कि मनुष्य की रोटी, कपड़ा और मकान ये तीन मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। तीसरी मूलभूत आवश्यकता है, मकान। अतः मकान अर्थात् गृह जिसके निर्माण के पूर्व वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार गृहमेलापक का विचार अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य भविष्य में होने वाली अशुभ घटनाओं से बच सकता है। इसीलिए वास्तुविद्या हमें निर्देश करती है कि अमुक भूमि निवास योग्य है अथवा नहीं। बारह राशियों– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन तथा इन राशियों के स्वामी ग्रह एवं सत्ताइस नक्षत्रों को आधारभूत मानकर मेलापक की गणना करते हैं। जिसका विस्तृत विवेचन इस इकाई के अन्तर्गत की गयी है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

राशि– ज्योतिषशास्त्र के अनुसार 12 राशियाँ होती हैं। जिनके नाम क्रमशः– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन हैं।

नक्षत्र– 'न क्षीयते क्षरते वा' अर्थात् जिसका क्षय न हो उसे नक्षत्र कहते हैं। हमारे ज्योतिषशास्त्र में सत्ताइस नक्षत्रों की गणना प्रमुखतया की जाती है। अश्विनी से रेवती पर्यन्त सत्ताइस नक्षत्र होते हैं।

ग्रह– कालविधायक शास्त्र के अनुसार सात प्रधान ग्रह तथा दो छाया ग्रह हैं। सूर्यादि सात ग्रहों को हम राशियों के स्वामी के रूप में प्रतिपादित करते हैं।

अष्टकूट– मेलापक हेतु अष्टकूट का विधान किया गया है। वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री, भकूट, गण, नाडी ये आठ कूट ज्योतिषशास्त्र में बतलाये गये हैं।

राशि स्वामी– बारह राशियों के स्वामी अलग–अलग ग्रह होते हैं। मेष और वृश्चिक राशि के स्वामी मङ्गल, वृष और तुला राशि के स्वामी शुक्र, कन्या और मिथुन के स्वामी बुध, कर्क के स्वामी चन्द्रमा, मीन और धनु के स्वामी गुरु, मकर और कुम्भ के स्वामी शनि तथा सिंह राशि के स्वामी सूर्य हैं। सूर्य और चन्द्रमा एक–एक राशियों के स्वामी तथा शेष ग्रह दो–दो राशियों के स्वामी होते हैं।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 की उत्तरमाला

1. तीन 2. 9, 3. निर्धनता, 4. नवपञ्चम सम्बन्ध से, 5. उद्वेग

अभ्यास प्रश्न– 2 की उत्तरमाला

1. असत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5. सत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर प्रणीत– भट्टोत्पलवृत्ति सहित, समपादक– पं0 अच्युतानन्द झा,(2014), चौखम्बा विद्याभवन, प्रकाशन, वाराणसी
2. विश्वकर्मप्रकाश, सम्पादक– महर्षि अभय कात्यायन, (2019), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. वास्तुराजबल्लभ, श्रीमण्डनसूत्रधारकृत, सम्पादक– श्री अनूप मिश्र, (सं0 2053), मास्टर खेलाडीलाल प्रकाशन, वाराणसी
4. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी।
5. वास्तु रत्नाकर, सम्पादक– विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज (2012), वाराणसी

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, संपादक– कमलाकान्त ठाकुर 'मैथिल', भारतीय विद्या प्रकाशन (2019), वाराणसी
2. सराङ्गणसूत्रधार, श्री भोजदेव प्रणीत, संपादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2017), वाराणसी
3. मयमतम्, मयमुनि कृत, सम्पादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2019), वाराणसी
4. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल प्रणीत, सम्पादक– आचार्य कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (1999), वाराणसी
5. मुहूर्तमार्तण्ड, श्रीनारायण दैवज्ञ विरचित, व्याख्याकार– डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र, कृष्णदास अकादमी (1997), वाराणसी
6. गृहवास्तुप्रदीप डॉ0 शैलजा पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी
7. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, (2005), वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र0 1 गृहमेलापक में राशिज्ञान पर विस्तृत निबन्ध लिखें।
प्र0 2 गृहनक्षत्र विचार पर विस्तृत प्रकाश डालें।
प्र0 3 ग्रहमैत्री विचार को प्रतिपादित करें।
प्र0 4 योनि एवं गण विचार तथा उसके फल को सविस्तृत विवेचित करें।
प्र0 5 नाड़ी के प्रकार को लिखकर नक्षत्रों के द्वारा नाड़ी विचार कैसे करेंगे? समीक्षा करें।

इकाई - 3 आय साधन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

मानव समुदाय ही नहीं अपितु चराचर जगत् में प्राणिमात्र के जीवन में आश्रय और आवास का महत्त्व है। हमारे ऋषियों ने पंचतत्त्वों से यदि जीवयष्टि की परिकल्पना की है तो पंचतत्त्वाश्रय में जीव की विद्यमानता की अवधारणा भी दी है– यह अद्भुत और विज्ञान–विश्रुत परिकल्पना है। यह अनन्य और अप्रतिम है। जब मानव के मन में सुन्दर, श्रेष्ठ और सात्विक समृद्धि प्रदायक आवासों का विचार जागा तो उसने अपने आसपास के समृद्धजनों के आवास के अनुकरण में गृह की परिकल्पना की, जब वह भी समृद्धि को प्राप्त हुआ तो अन्य ने भी उसका अनुसरण किया ''लोकस्तदनु वर्तते। इस प्रकार के अनुकरण में ही निर्देशों का आदान–प्रदान हुआ होगा और ये ही लोककण्ठाश्रित निर्देश कालक्रम में सिद्धान्त का स्वरूप पा गए। अनुभवों के सैद्धान्तिक शास्त्र स्वरूप में परिणत और ग्रंथित होने का यही क्रम है। वास्तुशास्त्रों के विकासक्रम का भी उत्स एवं आधार यही है।

यज्ञादि अनुष्ठान का लाभ गृहस्थ को अपने आवास में होने पर ही मिलता है। शुद्ध और सात्विक वास्तु की आवश्यकता के साथ ही इष्टापूर्त कर्मानुष्ठानों की बढ़ती लोकप्रियता और इह–परलोक समृद्धि की कामना की पूर्ति स्वगृह में ही हो सकती है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति तभी हो सकती है जब मनुष्य वास्तुशास्त्रोक्त सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए स्वगृहनिर्माण हेतु भूखण्ड का चयन करें तथा तदनुरूप भवन का निर्माण कराये। प्रस्तुत इकाई में हम 'आय साधन' शीर्षक का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

- अष्टविध आय को जान सकेंगे।
- अष्ट आयों के गणित प्रक्रिया को बता सकेंगे।
- व्यय के प्रकार तथा साधन विधि को समझ लेंगे।
- गृहनक्षत्र ज्ञात करने की गणितीय विधि में निपुण होंगे।
- गृह अंश के प्रकार तथा उसके साधन विधि को बता सकेंगे।
- गृह की आयु–वारादि की गणितीय विधि को समझा सकेंगे।

3.3 आय साधन–सामान्य परिचय

गृहनिर्माण के पूर्व यह जान लेना नितांत आवश्यक है कि वह घर गृहस्वामी के लिए उन्नतिकारक होगा या नहीं। इस हेतु गृह की आय तथा व्ययादि की गणना वास्तुवाङ्मय में वर्णित है। मनुष्य जो भूखण्ड खरीदने जा रहा है अथवा उस पर गृहनिर्माण

कराने जा रहा है तो इसके पूर्व यदि वह यह जानना चाहता है कि चयनित भूखण्ड आय की दृष्टि से फलदायी होगा या नहीं। इसके लिए वास्तुशास्त्र सम्मत गणित पद्धति का उपयोग करके हम आयादि के शुभाशुभ की जानकारी ज्ञात कर सकते हैं। प्राचीन विद्वानों ने भूखण्ड–शोधन, आय–व्यय, काकिणी, गृहमेलापक इत्यादि के द्वारा निवास 'योग्य भूमि चयन' की जो विधा जनसामान्य के लिए उपलब्ध कराया है, वह अत्यन्त ही प्रासंगिक है। अतः उनके द्वारा निर्देशित सिद्धान्तों का अनुपालन करते हुए गृहनिर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए।

अतएव भूमि का मापन इस प्रकार से किया जाना श्रेयस्कर है क्योंकि आय, व्यय, नक्षत्र, योनि, आयु, तिथि और वार ये सात अ¯ कभी प्रतिकूल नहीं होने चाहिए। इनकी तुलना गृहपति के नाम और वास्तुस्थल के नाम और नक्षत्र से करना उचित होता है। वस्तुतः आय आठ प्रकार के होते हैं। यथा–

'आया ध्वजो धूम्रहरिश्वगोखरेभध्वाङ्क्षकाः'

अर्थात् ध्वज, धूम्र, हरि (सिंह), श्व (कुत्ता), गो (वृष), खर (गर्दभ), इभ (गज) तथा ध्वाङ्क्षक (काक) ये आठ प्रकार के आय होते हैं।

विशेष– आठ प्रकार के आयों में चार आय विषमसङ्ख्यक होते हैं तथा चार प्रकार के आय सम संख्यक होते हैं। यथा–

विषम संख्यक आय–

1. ध्वज, 3. सिंह, 5. वृष, 7. गज

सम संख्यक आय–

2. धूम, 4. श्वान, 6. खर, 8. काक

3.3.1 आय साधन विधि–

विश्वकर्मप्रकाशोक्त अष्टविध आय साधन की विधि एवं उनकी दिशाएँ–

विस्तारेण हतं दैर्घ्यं विभजेदष्टभिस्ततः।।
यच्छेषं सम्भवेदायो ध्वजाद्यास्ते स्युरष्टधा।
ध्वजो धूम्रो हरिः श्वा गौः खरेभौ वायसोऽष्टमः।।
पूर्वादि दिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामपि स्थितिः।

स्वस्थानात्पंचमे स्थाने वैरत्वं च महद् भवेत्।।

विषमायः शुभः प्रोक्तः समायः शोकदुःखदः।

स्वस्थानगा बलिष्ठाः स्युर्न चान्यस्थानगाऽशुभाः।।

भूखण्ड के विस्तार (चौड़ाई) तथा दैर्घ्य (लम्बाई) का परस्पर गुणा करके उसके गुणनफल में आठ का भाग देने से एकादि शेष से क्रमशः 1. ध्वज, 2. धूम्र, 3. सिंह, 4. श्वान, 5. गो, 6. खर (गर्दभ), 7. इभ (गज) तथा 8. वायस (काक या ध्वाङ्क्ष) आठ आय होते हैं।

सूत्र–

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8} = \text{शेष संख्या तुल्य गृह की आय}$$

ये क्रमशः पूर्वादि दिशाओं क्रमशः 1. पूर्व, 2. आग्नेय, 3. दक्षिण, 4. नैऋत्य, 5. पश्चिम, 6. वायव्य, 7. उत्तर, तथा 8. ईशान में बली होते हैं। जो आय जिस दिशा में बली होता है उस आय में उसी दिशा का घर बनाना चाहिए। अपनी दिशा को छोड़कर अन्य दिशाओं में निर्बल होते हैं।

इन आयों में विषम संख्या के आय अर्थात् ध्वज, सिंह, गो तथा गज शुभ कहे गये हैं तथा सम संख्या वाले आय धूम्र, श्वान, खर तथा गज अर्थात् सामान्यतः मनुष्यों के गृहनिर्माण में शोक एवं दुःख देने वाले होते हैं। इसी कारण से हमें आयादि का ज्ञान गृहनिर्माण से पूर्व करना चाहिए।

आयों के दिग्बल
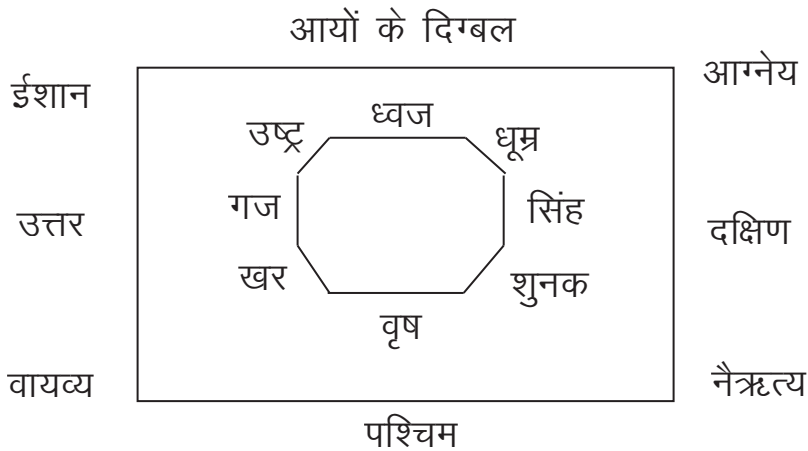
प्रथम आय (ध्वज) साधन–

उदाहरणम्–

मान लीजिये किसी भवन के भूखण्ड की

लम्बाई = 57 हाथ तथा चौड़ाई = 45 हाथ

अतः सूत्रानुसार,

$$\frac{\text{भूखण्ड की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{57 \times 45}{8}$$

$$= \frac{2665}{8}$$

8) 2665 (333
24
26
24
25
24
1 = शेषांक

शेषांक तुल्य गृह का प्रथम आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का प्रथम आय = ध्वज आय।

द्वितीय आय (धूम्र) साधन–

उदाहरण–

मान लीजिये गृह की लम्बाई = 14 हाथ

तथा चौड़ाई = 7 हाथ

दोनों का गुणनफल= 14×7

$= 98$

पुनः सूत्र से,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{14 \times 7}{8}$$

$$= \frac{98}{8}$$

$$8 \overline{)\;98\;} (12$$
$$\begin{array}{r} 98 \\ 8 \\ \hline 18 \\ 16 \\ \hline 2 \end{array} = \text{शेषांक}$$

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का द्वितीय आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का द्वितीय आय = धूम्र आय।

तृतीय आय (हरि) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 11 हाथ

तथा गृह की चौड़ाई = 9 हाथ

सूत्रानुसार,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{11 \times 9}{8}$$

$$= \frac{99}{8}$$

$$8 \overline{)\ 99\ } (12$$

```
8 ) 99 (12
    8
   ---
    19
    16
   ---
     3   = शेषांक
```

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का तृतीय आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का तृतीय आय = हरि (सिंह) आय।

चतुर्थ आय (श्वान) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 42 हाथ

तथा गृह की चौड़ाई = 30 हाथ

अतः सूत्र से,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{42 \times 30}{8}$$

$$= \frac{1260}{8}$$

$$
\begin{array}{r|l}
8 & 1260 \; (157 \\
 & \underline{8} \\
 & 46 \\
 & \underline{40} \\
 & 60 \\
 & \underline{56} \\
 & 4 \\
\end{array}
$$

4 = शेषांक

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का चतुर्थ आय प्राप्त होता है।

अतः गृह का चतुर्थ आय = श्वान आय स्पष्ट होता है।

पंचम आय (गो) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 55 हाथ

तथा चौड़ाई = 11 हाथ

तो सूत्रानुसार,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{55 \times 11}{8}$$

$$= \frac{605}{8}$$

$$
\begin{array}{r|l}
8 & 605 \; (75 \\
 & \underline{56} \\
 & 45 \\
 & \underline{40} \\
 & 5
\end{array}
$$

5 = शेषांक

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का पंचम आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का पंचम आय = गो (वृष) आय।

षष्ठ आय (खर) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 45 हाथ

तथा चौड़ाई = 30 हाथ

अतः सूत्र से,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8}$$

$$= \frac{45 \times 30}{8}$$

$$= \frac{1350}{8}$$

8) 1350 (168
8
―――
55
48
―――
70
64
―――
6 = शेषांक

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का षष्ठ आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का षष्ठ आय = खर (गदहा) आय।

सप्तम आय (इभ) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 47 हाथ

तथा चौड़ाई = 57 हाथ

तो,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8} = \text{शेषांक तुल्य गृह की}$$

$$= \frac{47 \times 57}{8}$$

$$= \frac{2679}{8}$$

$$
\begin{array}{r|l|l}
8 & 2679 & 334 \\
 & \underline{24} & \\
 & 27 & \\
 & \underline{24} & \\
 & 39 & \\
 & \underline{32} & \\
 & 7 & = \text{शेषांक}
\end{array}
$$

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का सप्तम आय प्राप्त होती है।

अतः गृह का सप्तम आय = इभ (गज) आय।

अष्टम आय (वायस) साधन–

उदाहरण–

यदि गृह की लम्बाई = 42 हस्त

तथा चौड़ाई = 32 हस्त

पूर्वोक्त विधि से,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई}}{8} = \text{शेषांक तुल्य गृह की}$$

$$= \frac{47 \times 32}{8}$$

$$= \frac{1344}{8}$$

8) 1344 (168
8
———
54
48
———
64
64
———
0 = शेषांक

नोटः– आचार्यों द्वारा कथित आय साधन के सूत्रानुसार यदि शेष 8 बचे तो अष्टम आय प्राप्त होता है, परन्तु 8 से भाग देने पर शेष 8 नहीं बचेगा वहाँ पर शून्य शेष बचेगा। अतः जो अष्टम आय है, वह शून्य शेषाœ प्राप्त होने पर माना जाना चाहिए।

अतः यहाँ पर गृह का अष्टम आय = वायस (काक) आय स्पष्ट होती है।

इस प्रकरण में आठ आयों की साधनविधि गणितीय पद्धति के द्वारा स्पष्टतया प्रतिपादित किया गया है। अतः उपरोक्त उदाहरण को अच्छी प्रकार से समझकर किसी भी भूखण्ड का आय साधन कर सकते हैं। आय का ज्ञान होने के पश्चात् इनके शुभाशुभ फल को जानना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि फल को जाने बिना हम आय के महत्त्व को नहीं समझ पायेंगे और नहीं अन्य जन को समझा पायेंगे। अतः साधनविधि का सम्यक्तया प्रतिपादन इस इकाई में किया गया है, परंतु इसके फल का विचार अग्रिम इकाई–4 जो 'आयादि फल विचार' शीर्षक से सम्बन्धित है, इसमें किया जायेगा।

अभ्यास प्रश्न–1

1. विषम संख्यक आयों की संख्या कितनी है?
2. सम संख्यक आयों की संख्या बताएँ।

3. ध्वज आय किस दिशा में बली होता है?
4. उत्तर दिशा में कौन सा आय बली होता है?
5. वृष आय की दिशा बताएँ।

1.3.2 गृह निर्माणार्थ शेष पदार्थों का आनयन–

आय साधन के उपरान्त अब यहाँ पर व्यय गृह नक्षत्र, गृह अंश, गृह वय, वार तथा तिथि निकालने की रीति बतलाई जा रही है।

व्यय साधन विधि–

इस प्रस¯ में समरा¯णसूत्रधार में कहा गया है–

गृहादिषु क्षेत्रफलं गणयेदष्टभिर्भजेत्।
त्रिघनेन भजेच्छेषं नक्षत्रेष्टहृते व्ययः।।

अर्थात् गृहादिकों के क्षेत्रफल को ज्ञात कर उस संख्या में आठ का भाग दें, इसके बाद तीन के घन से भाग कर शेष को लें, नक्षत्र को आठ से गुणा कर व्यय लेवें।

परन्तु उक्त गणित युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि अपराजितपृच्छा, शिल्परत्नाकर और ज्योतिषरत्नमालादि में व्यय निकालने की विधियाँ आई हैं। शिल्परत्नाकर के अनुसार पहले गृह का नक्षत्र जानना चाहिए। क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके उसमें 27 का भाग दें।

अर्थात्,

$$\frac{\text{क्षेत्रफल} \times 8}{27} = \text{गृह नक्षत्र।}$$ यथा–

फले चाष्टगुणे तस्मिन् सप्तविंशति भाजिते।

यच्छेषं लभते तत्र नक्षत्रं तद् गृहेषु च।।

नक्षत्र साधन–

$$\frac{\text{गृह का क्षेत्रफल} \times 8}{27} = \text{शेषांक गृह नक्षत्र}$$

उदाहरण–

मान लीजिये गृह का क्षेत्रफल = 2665 हस्त

पूर्वोक्त सूत्र से,

$$= \frac{2665 \times 8}{27}$$

$$= \frac{21320}{27}$$

```
27) 21320 (789
    189
    ----
     242
     216
     ----
      260
      243
      ----
       17   = शेषांक
```

अतः शेषांक तुल्य गृह का 17वाँ नक्षत्र अनुराधा प्राप्त होता है।

उपरोक्त प्राप्त नक्षत्र संख्या को 8 से भाग करें और प्राप्त शेष को व्यय समझें–

$$\frac{\text{नक्षत्र}}{8} = \text{शेषांक व्यय की संख्या}$$

जैसा कि शिल्परत्नाकर में कहा गया है। यथा–

नक्षत्रं वसुभिर्भक्तं यच्छेषं तद् व्ययो भवेत्
एकैकायस्य संस्थाने व्ययश्च त्रिविधा स्मृतः।।

एक–एक आय के साथ व्यय भी तीन प्रकार के होते हैं।

1. पिशाच = आय–व्यय समान, 2. राक्षस = आय से व्यय अधिक और 3. नर = आय से व्यय कम शेषाœ प्राप्त होने पर।

उदाहरण–

पूर्वोक्त साधित गृह नक्षत्र संख्या = 17

अतः,

$$\frac{17}{8}$$

$$8\ )\ 17\ (\ 2$$
$$\underline{16}$$
$$1 = \text{शेषांक}$$

इस प्रकार शेषांक तुल्य गृह का व्यय प्रथम अर्थात् पिशाच व्यय प्राप्त होता है। शेष व्यय का भी ज्ञान इसी प्रकार से किया जा सकता है।

गृह अंश साधन– अंशक तीन प्रकार के होते हैं। इन अंशकों के नाम हैं–

1. इन्द्र, 2. यम और 3. राजा। ये अपने नाम के अनुसार ही फल देते हैं। गृह प्रयोजनार्थ इनको जानना आवश्यक है। इनके साधन के विषय में समरांगण सूत्रधार में उल्लिखित है कि– प्राप्त व्यय की संख्या में गृह के नाम अक्षरों की संख्या जोड़कर, इन तीनों ही प्रकार के व्ययों में तीन का भाग दें जो शेष बचे, वह अंश होता है। यथा–

व्ययं क्षेत्रफले क्षिप्त्वा गृहनामाक्षराणि च।
भागं त्रिभिर्हरेत् तत्र यच्छेषु सोंऽशको भवेत्।।

सूत्र–

$$\frac{\text{गृह क्षेत्रफल + गृह की व्यय संख्या + गृह नामाक्षर}}{3}$$

= शेषांक व्यय की संख्या

उदाहरण–

यदि गृह क्षेत्रफल = 10 हस्त

पूर्वोक्त साधित व्यय की संख्या = 1

गृह नामाक्षर संख्या = 1

अतः सूत्रानुसार,

$$= \frac{101 + 1 + 1}{3}$$

$$= \frac{103}{3}$$

3) 103 (34
9
―――
13

$$\frac{12}{1} = \text{शेषांक}$$

इससे स्पष्ट होता है कि शेषांक तुल्य गृह का प्रथम अंश 'इन्द्र अंश' होगा।

गृह वय (आयु) साधन–

गृह की लम्बाई तथा चौड़ाई के योग को आठ से गुणा कर सत्ताईस से विभाजित करने पर गृह की आयु (बाल, कुमार, युवा, वृद्ध तथा मरण) ज्ञात होती है। जैसा कि मयमतम् में कहा गया है–

''पुनरपि वसुभिर्गुणिते त्रिनव हत्या फलं वयः शिष्टम्''

सूत्र,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई} \times 8}{27} = \text{फल (गृह की आयु)}$$

उदाहरण–

मान लीजिये गृह की लम्बाई = 30

तथा चौड़ाई = 20

सूत्र से,

$$= \frac{30 \times 20 \times 8}{27}$$

$$= \frac{4800}{27}$$

27) 4800 (177
27
———
210

```
   189
 -----
× 210
   189
 -----
    21
```

भागफल = 177

अतः गृह की आयु = 177 वर्ष ज्ञात होती है।

गृहतिथि साधन–

गृह की लम्बाई तथा चौड़ाई में आठ गुणा कर 15 से विभाजित करने पर शेष संख्या तुल्य तिथि प्राप्त होती है।

सूत्र,

$$\frac{\text{गृह की लम्बाई} \times \text{चौड़ाई} \times 8}{15} = \text{शेष संख्या (गृहतिथि)}$$

उदाहरण–

मान लीजिये गृह की लम्बाई = 10

तथा चौड़ाई = 5

$$= \frac{10 \times 05 \times 8}{15}$$

$$= \frac{400}{15}$$

```
15 ) 400 ( 26
     30
    -----
     100
      90
    -----
      10 = शेष
```

अतः शेष संख्या तुल्य गृह की तिथि दशमी प्राप्त होती है।

गृहवार साधन–

$$\frac{\text{गृह का क्षेत्रफल} \times 9}{7} = \text{शेष संख्या (गृह वार)}$$

उदाहरण–

$$\frac{2665 \times 9}{7} \quad \text{लब्धि} = 3283, \text{ शेष} = 4, \text{ बुधवार।}$$

अभ्यास प्रश्न–2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

प्र0 1 व्यय................प्रकार के होते हैं।

प्र0 2 नक्षत्रों की कुल संख्या................है।

प्र0 3 यम................का भेद है।

प्र0 4 गृह आयु की....................अवस्थाएँ होती हैं।

3.4 सारांश–

निष्कर्षतः वास्तुविद्या के अनुसार भवन निर्माण से कुवास्तुजनित दोष दूर हो जाते हैं। वास्तुविद्या बहुत प्राचीन विद्या है। प्रस्तुत इकाई में अध्ययन के उपरान्त अष्टविध आयों का साधन तथा आय का ज्ञान गणितीय विधि से कैसे कर सकते हैं यह ज्ञात होता है। साथ ही आय के अतिरिक्त व्यय, गृह–नक्षत्र, गृह–अंश, गृह–वार, गृह–तिथि इत्यादि के भी साधन प्रक्रिया की गणितीय पद्धति का विश्लेषण किया गया। उपरोक्त आयादि की साधन प्रक्रिया से यह ज्ञात होगा कि अमुक स्थान गृहनिर्माण योग्य है अथवा नहीं। जैसे– आठ प्रकार

के आयों में चार विषम तथा चार सम आय होते हैं। यदि गणितीय प्रक्रिया से विषम आय प्राप्त हो तो गृह के लिए शुभ होता है और सम आय प्राप्त हो तो अशुभ होता है। इसी प्रकार घर का जो नक्षत्र है, वहाँ से अपने नाम के नक्षत्र तक गिनकर जो संख्या हो उसमें 9 से भाग दें। यदि 3 शेष बचे तो धन का नाश, 5 बचे तो यश की हानि और 7 शेष बचे तो गृहकर्त्ता की मृत्यु होती है।

इसी प्रकार व्यय, अंश, वार, तिथि, आयु इत्यादि का साधन गृह का क्षेत्रफल जानकर प्रस्तुत इकाई में बताए गए नियमों के अनुसार कर सकते हैं। तदुपरान्त अभीष्ट भूमिखण्ड के लिए ज्ञात पदार्थों के शुभाशुभ फल का सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर तथा प्राप्त फल के आधार पर वास्तुजनित दोष को दूर कर सकते हैं अथवा उससे बचाव किया जा सकता है। यही इन वास्तुसिद्धान्तों के अध्ययन का प्रमुख ध्येय है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

हरि = सिंह वैर = शत्रु

श्वान् = कुत्ता महत् = अधिक

गो = वृष लोक = संसार

खर = गर्दभ (गदहा) वार = सप्तवार (रविवारादि)

इभ = गज (हाथी) तिथि = पंचदश (प्रतिपदादि)

ध्वाङ्क्षक = काक निर्बल = कमजोर

वायस = काक सबल = मजबूत

दिक् = दिशा हस्त = हाथ

दैर्घ्य = क्षेत्रफल गणयेत् = गणना करना

वसु = अष्ट (वसु) हृत = भाग करना

वय = आयु लभते = प्राप्त करना

बलिष्ठ = बलवान हरेत् = भाग देना

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–1 की उत्तरमाला

1. 4, 2. 4, 3. पूर्व, 4. गज, 5. पश्चिम

अभ्यास प्रश्न–2 की उत्तरमाला

1. तीन, 2. सत्ताईस, 3. गृह–अंश, 4. पाँच

3.7 सहायक ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समराङ्गणसूत्रधार, श्री भोजदेव प्रणीत, संपादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2017), वाराणसी
2. विश्वकर्मप्रकाश, सम्पादक– महर्षि अभय कात्यायन, (2019), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. वास्तुराजबल्लभ, श्रीमण्डनसूत्रधारकृत, सम्पादक– श्री अनूप मिश्र, (सं0 2053), मास्टर खेलाडीलाल प्रकाशन, वाराणसी
4. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी।
5. वास्तु रत्नाकर, सम्पादक– विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज (2012), वाराणसी

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर प्रणीत– भट्टोत्पलवृत्ति सहित, समपादक– पं0 अच्युतानन्द झा,(2014), चौखम्बा विद्याभवन, प्रकाशन, वाराणसी

2. मुहूर्त्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, संपादक– कमलाकान्त ठाकुर 'मैथिल', भारतीय विद्या प्रकाशन (2019), वाराणसी

3. मयमतम्, मयमुनि कृत, सम्पादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2019), वाराणसी

3. वास्तुसौख्यम्, टोडरमल प्रणीत, सम्पादक– आचार्य कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (1999), वाराणसी

4. मुहूर्त्तमार्तण्ड, श्रीनारायण दैवज्ञ विरचित, व्याख्याकार– डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र, कृष्णदास अकादमी (1997), वाराणसी

5. गृहवास्तुप्रदीप डॉ0 शैलजा पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी

6. वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, (2005), वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आय के प्रकारों को लिखकर उनकी दिशाओं का उल्लेख करें।
2. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा विषम संख्यक आयों का साधन करें।
3. स्वकल्पित उदाहरण द्वारा समसंख्यक आयों का साधन करें।
4. व्यय कितने प्रकार के होते हैं? गणितीय विधि द्वारा स्पष्ट करें।

इकाई - 4 आयादि फल विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 आयादि फल विचार : सामान्य परिचय

4.3.1 आय फल विचार

(क) आय स्वरूप विचार

(ख) वर्णक्रम से आय का शुभाशुभत्व विचार

(ग) राशि के अनुसार आय का फल कथन

(घ) प्रकारान्तर से आयफल विचार

(ङ) वसिष्ठ मत में आयफल विचार

4.3.2 व्यय–नक्षत्र–अंश–वार–तिथि आयु आदि फल विचार

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषित शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना–

प्रियच्छात्र! पूर्व इकाई में आप लोगों ने आय साधन की गणितीय प्रक्रिया का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई डीवीएस (DVS)–102 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई 'आयादि फल विचार' शीर्षक से सम्बन्धित है।

वस्तुतः वास्तुशास्त्र लोकोपकारक शास्त्र है। इसमें दिक् देश तथा काल को विशेष महत्त्व दिया गया है। वैदिक विधाओं में वास्तुशास्त्र ही एक ऐसी विधा है, जिसमें आवासीय एवं अन्य कार्यों के लिए निर्मित भवनों में पंचमहाभूतों के संतुलन को प्राथमिकता दी गई है। साथ ही उस भवन में रहने वाले मनुष्यों के क्रियाकलापों में भी ऊर्जा, स्फूर्ति एवं सन्तुष्टि का संचार होता है। भवन निर्माणार्थ दिशा, स्थानादि की प्रक्रियाएँ आवश्यक मानी गयी हैं। मनुष्य का जीवन इन घटकों के शुभाशुभ फलों से पूर्णतः प्रभावित होता है। अतः वास्तुपरक भवन–निर्माण आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई में आप 'आयादि फल विचार' का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य–

- अध्ययनोपरांत अष्टविध आय फल को बता सकेंगे।
- आय के स्वरूप को समझा सकेंगे।
- वर्ण भेद से आय के शुभाशुभ फलों को समझ लेंगे।
- राशि भेद से आय का शुभाशुभत्व बता सकेंगे।
- आचार्य वसिष्ठ के मत को प्रतिपादित करने में समर्थ होंगे।
- व्यय–गृह नक्षत्र–गृह अंश–वार–तिथि–आयु आदि के फल को समझा सकेंगे।

4.3 आयादि फल विचार : सामान्य परिचय

वास्तुशास्त्र का उद्देश्य मनुष्य को कल्याण मार्ग में लगाना है– 'वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया'। शास्त्र की मर्यादा के अनुसार चलने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्तःकरण में ही कल्याण की इच्छा जाग्रत होती है। वास्तु शब्द का अर्थ है– निवास करना (वस निवासे धातु)। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे वास्तु कहा गया है। वास्तुशास्त्र के अनुरूप गृहनिर्माण में सभी प्रकार की उपलब्धि तथा सुख–शान्ति की प्राप्ति होती है। अत एव गृहनिर्माण में वास्तुशास्त्र के महत्त्व को सर्वतोभावेन महत्त्वपूर्ण माना गया है। गृहनिर्माण हेतु भू–चयन से प्रारम्भ कर गृहप्रवेश तक की समस्त विधाओं का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

आयादि फल का विचार वास्तुशास्त्र का प्रमुख विचारणीय विषय है। पूर्व इकाई में आप लोगों ने पढ़ा कि आय आठ प्रकार के होते हैं। अष्ट संख्यक आयों में चार विषम सङ्ख्यक तथा चार सम सङ्ख्यक आय होते हैं। विषम आय– ध्वज, सिंह, वृष और गज हैं। सम आय– धूम्र, श्वान, खर और काक हैं। गृहारम्भ में विषम आय को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रस¯ में आचार्य श्रीपति ने कहा है– ''गृहेषु चायाः विषमाः प्रशस्ताः।''

अर्थात् शुभफल की प्राप्ति के लिए गृहारम्भ में विषम आय ही ग्राह्य हैं। तथा समसंख्यक आय शोककर एवं दुःखद होते हैं। इस सन्दर्भ में महर्षि वसिष्ठ ने कहा है–

''विषमाय शुभायैव समायः शोकदुःखदः''।

वस्तुतः गृहारम्भ के अवसर पर आयों के स्थिति के अनुसार ही निवासकर्त्ता को उसका फल प्राप्त होता है। विषम आय नाम से ही

शुभफलदायक होते हैं। ध्वज आय गगन में यश–पताका को प्रसारित करता है, सिंह आय सिंहवत् साम्राज्य स्वामित्व को देता है, वृष आय समृद्धि और ऐश्वर्य को देता है तथा गज आय सर्वार्थ सिद्धि को देता है। किन्तु सम आय तो नाम से ही शोकफलदायक होते हैं। एतदर्थ वास्तुशास्त्रज्ञों ने ध्वजादि आयों के शुभाशुभ फलों का वर्णन किया है।

4.3.1 आय फल विचार–

ध्वज आय सदा अर्थ की दृष्टि से लाभकारी है। धूम्र आय से संताप होता है। मृगाधिप या सिंह आय से भोगों की प्राप्ति होती है। श्वान आय से सदा कलह होता है। वृष आय धन–धन्य प्रदाता और खर आय से स्त्रियों में दूषण, दुश्चिरत्र होता है। गज आय से आराम, शुभ होता है तथा ध्वांक्ष आय से निश्चित ही मृत्यु होती है। जैसे–

ध्वेजेऽर्थलाभः सन्तापो धूमे भोगो मृगाधिपे।
कलिः शुनि धनं धान्यं वृषे स्त्रीदूषणं खरे।।
गजे भद्राणि दृश्यन्ते ध्वाङ्क्षे तु मरणं ध्रुवम्।

शिल्पी के लिए यह विहित है कि वह वृष आय के स्थान पर गज आय तथा वृष व गज आय के स्थान पर सिंह आय दे सकता है किन्तु अन्यत्र कहीं पर भी वृष आय को नहीं दिया जाना चाहिए। ध्वज आय सर्वत्र सभी निर्माणादि में प्रशस्त है। जैसा कि समरा¯ण सूत्रधार में वर्णित है–

वृषस्थाने गजं कुर्यात् सिंहं वृषभहस्तिनोः।
न कुर्याद् वृषमन्यत्र शस्यते सर्वतोध्वजः।।

गृह के अन्य साधनों में देय आय–

देवपकरणों या देव पूजन की सामग्री साधनों में, घर के कूप में, वेदी,

मण्डप, रसोई गृह, जलाधार (पाणेरा) में, जलाशयों में, थाली–कटोरी जैसे भोजन पात्रों में, कठोर और अन्न के भण्डार– ऐसे सभी गृहों में एवं इन गृहोपकरणों में वृषभ आय ही दे। गजशाला में गजसंज्ञक आय देनी चाहिए। धुडशाला, गोशाला और गोकुलों में वृष आय देय है। सिंहासन बनाने में सिंह संज्ञक आय देय है। आतपत्र या छत्र के निर्माण में गज आय देय कही गई है। सभी प्रकार के राजचिह्नों सहित चामर, व्यजन, शास्त्र और कवच के निर्माण में सिंह या गज आय देनी चाहिए। प्रासाद, प्रतिमा, लि¯, पीठ, मण्डप, वेदी, कुण्डों के निर्माण–नियोजन में ध्वज संज्ञक देनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त गजशाला, अश्वशाला और वृष गोशाला आदि में सिंह संज्ञक आय का प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिये। निम्न श्रेणिकों के भवनों के लिए, खर, श्वान, ध्वांक्ष एवं धूम्र संज्ञक आयों को शुभकारक माना गया है। जो अग्निजीवी जातियाँ (लोहार, स्वर्णकार आदि) हैं, उनके लिये धूम आय श्रेष्ठ है। संन्यासियों के लिए ध्वांक्ष आय हितकारी है। स्वगणों और स्वपाकों सहित स्ववेश्यों के लिए खर आय को शुभ कहा गया है। नट, नर्तकों के गृहों, वारांगनाओं के भवनों के लिए खर आय शुभ है। इसी प्रकार कुलाल–कुम्भकार, धोबी आदि के लिये खर आय शुभ होती है। यथा–

आयो गृहवदुद्वाहवेदी मण्डपयोर्भवेत्।।
महानसे वृषं दद्याज्जलाधारे जलाशये।
स्थाल्यां भोजनपात्रे च कोष्ठागारेऽन्नधारणे।।
एतद्गृहे तथा दद्यात् गृहोपकरणेषु च।
वृषभं गजशालायां प्रदद्याद् गजमेव च।।
वृषं तुरशालासु गोशाला गोकुलेषु च।
पदद्यादासने सिंहमातपत्रेषु तु ध्वजम्।।
चिह्नेष्वपि च सर्वेषु चामरव्यजनादिषु।

सिंह गजं वा शस्त्रेषु रथेषु कवचेषु च।।
गजा श्ववृषशालासु सिंह यत्नेन वर्जयेत्।।
एवं अधमानां खरध्वांक्षधूमश्वानः शुभावहाः।
धूमोऽग्निजीविनां शस्तो ध्वाङ्क्षः संन्यासिनां हितः।।

विश्वकर्मप्रकाशोक्त आय फल–

ध्वज, सिंह, गज तथा गो (वृष)– ये आय अपने–अपने स्थानों में विशेष शुभफल देते हैं। इनमें ध्वज आय सभी प्रकार के आवासों के निर्माण में शुभ होता है, किन्तु गो (वृष) केवल उन्हीं में शुभ है। वृष–सिंह तथा गज आयों का विचार पुट (सन्दूक, स्यान, डिबिया, गुफा), कर्पट (कपड़ा–तम्बू आदि), कोट (किला–जेल तथा युद्धकालीन बंकर एवं चौकियाँ) इनके निर्माण में प्रशस्त होते हैं। गज आय का प्रयोग वापी (बावड़ी), कूप, तालाब तथा पानी आदि में करना चाहिए। सिंह आय का प्रयोग देवताओं, राजाओं के सिंहासनों तथा आसनों के लिये करें। गज आय का प्रयोग (खाट–पलंग–बेड–गद्दा–बिछौना–चादर आदि) में प्रशस्त है। वृष आय का प्रयोग भोजन पात्रों के नाप के लिये करना चाहिये। छत्र आदि में ध्वज आय प्रशस्त होती है।

अग्निगृहों (रसोई–चिमनी आदि) में तथा वस्त्र–निर्माण गृहों में धूम्र आय की माप प्रयुक्त करें। म्लेच्छादि जातियों (ईसाई एवं मुसलमानों) के लिये कुछ के मत से श्वान आय का प्रयोग करना चाहिये। वैश्यों (व्यापारियों) के गृह बनाने में खर आय का प्रयोग करना चाहिये तथा अन्य के कुटी (झोपड़ी) आदि बनाने के लिये काक आय का प्रयोग करें। प्रासाद निर्माण, नगर–निर्माण तथा वेश्म निर्माण में वृष–सिंह तथा ध्वज आयों का प्रयोग करें। गज आय अथवा ध्वज आय में गजशाला बनवानी चाहिये। ध्वज खर तथा वृष आय में अश्वशाला का

निर्माण करना चाहिये।

उष्ट्रशाला का निर्माण गज आय अथवा ध्वज आय अथवा वृष आय का प्रयोग करें। पशुशाला (गोशाला–महिषशाला) इनके निर्माण में वृष अथवा ध्वज आय का प्रयोग करना चाहिये। शय्या निर्माण में वृषभ आय शुभ होती है तथा पीठ सिंहासन (अधिकारी की कुर्सी आदि में) सिंह आय शुभ फलदायक होती हैं पात्र, छाता तथा वस्त्रों में वृष आय अथवा ध्वज आय श्रेष्ठ होती है अथवा ध्वज आय प्रशस्त कही गयी है।

जूता, खड़ाऊँ, चप्पल आदि का निर्माण सिंह आय में अथवा ध्वज आय में करना चाहिये। स्वर्ण, चाँदी आदि का कार्य जिन गृहों में होता है, उनके घरों के लिये ध्वज आय शुभ है।

(क) आय स्वरूप विचार–

ध्वाङ्क्षः शिल्पितपस्विनां हितकरस्तेषां मुखं नामयद्
ध्वाङ्क्षः काकमुखो विडालवदनो धूमो ध्वजो मानुषः।।
सर्वे पक्षिपदा हरेरिव गला हस्ता नरस्येव तत्।
प्राच्याः सृष्टिगताः क्रमेण पतयो ह्यष्टौ च ते तन्मुखाः।।

ध्वाङ्क्ष (कौआ) नामक आय शिल्प और तपस्वियों के गृह के लिए शुभ होता है। ध्वाङ्क्ष आय का मुख कौआ के सदृश होता है। धूम का बिडाल के सदृश, सिंह का मनुष्य के सदृश शेष आयों का स्वरूप अपने नाम के अनुरूप होता है, सबके पैर पक्षियों जैसे सिंह के सदृश गला और मनुष्य के सदृश हाथ होता है। पूर्वादि दिशाओं के क्रम से आय बली होते हैं। इन्हीं दिशाओं में इनका मुख भी होता है। अतः घर का मुख भी इनके अनुसार रखना चाहिए।

(ख) वर्णक्रम से आय का शुभाशुभत्व विचार–

ब्राह्मणेषु ध्वजः शस्तः प्रतीच्यां कारयेत्मुखम्।

सिंहश्च भूभृतां शस्तः उदीच्यां च मुखं शुभम्।।
विशां वृषः प्राग्वदने शूद्राणां दक्षिणे गजः।
सर्वेषामेव चायानां ध्वजः श्रेष्ठतमो मतः।।
ध्वजायः क्षत्रिय विशोः प्रशस्तो गुरुरब्रवीत्।
सिंहायो सर्वथा त्याज्यो ब्राह्मणेन वृषेत्सुना।।
सिंहाये चण्डता गेहे अल्पापत्यः प्रजायते।
ध्वजाये पूर्णसिद्धिः स्यात् वृषायः पशुवृद्धिदः।
गजाये सम्पदां वृद्धिः शेषायाः शोकदुःखदाः।

1. ब्राह्मणों के लिए ध्वज आय के अनुसार निर्मित गृह शुभ होता है, उनके घर का मुख पश्चिम दिशा में होना चाहिये।
2. क्षत्रियों के लिए सिंह आय प्रशस्त है तथा उनके गृह का मुख उदीचि (उत्तर) दिशा में होना चाहिये।
3. वैश्यों के लिए वृष आय श्रेष्ठ होता है तथा उनके गृह का मुख पूर्व दिशा में होना चाहिये।
4. शूद्रों के लिए गज आय श्रेष्ठ होता है तथा उनके गृह का मुख दक्षिण दिशा में होना चाहिये। सभी के लिये ध्वज आय श्रेष्ठ होती है।

गुरु का मत है कि ध्वज आय क्षत्रियों एवं वैश्यों के लिये भी प्रशस्त है। परन्तु ब्राह्मण यदि अपना कल्याण चाहता है तो उसे सिंह आय में अपना घर नहीं बनवाना चाहिये। सिंह आय में गृह में उग्रता बढ़ती है, सन्तान अल्पता रहती है जबकि ध्वज आय से पूर्ण सफलता और वृष आय में पशुधन की वृद्धि होती है। गज आय सभी प्रकार की सम्पत्ति को बढ़ाती है तथा शेष शोक एवं दुःखप्रद होते हैं।

(ग) राशि के अनुसार आय का फल कथन–

कर्कवृश्चिभीनानां ध्वजायः शुभदो मतः।

वृषभायः शुभः प्रोक्तो मेषसिंहधनर्भृताम् ।।

तुलामिथुनकुम्भानां गजायो वाŒछितप्रदः।

वृषकन्यामृगाणाŒच सिंहायः शुभदो भवेत् ।।

- कर्क, वृश्चिक तथा मीन राशि वालों के लिए ध्वज आय शुभ फलदायक होती है।
- मेष, सिंह तथा धनु राशि वालों के लिये वृष (गो) आय शुभप्रद होती है।
- तुला, मिथुन तथा कुम्भ राशि वालों के लिये गज आय वाŒछित फल को देने वाला होती है।
- वृष, कन्या तथा मकर राशि वालों के लिये सिंह आय शुभफलदायक होती है।

(घ) प्रकारान्तर से आय फल विचार–

ध्वज आय में पर्याप्त धनलाभ, धूम्र आय में भ्रम, सिंह आय में विशेष लक्ष्मी, श्वान आय में कलह, वृष में धन–धान्य लाभ, खर आय में स्त्रीविनाश, गज में पुत्र लाभ, वायस (कौआ) में सर्वत्र शून्यता समझें।

अपने–अपने स्थान में यद्यपि सभी आय श्रेष्ठ होते हैं, तथापि ध्वज, गज, सिंह और वृष ये आय श्रेष्ठ होते हैं। ध्वज आय सर्वत्र, वृष आय को अन्यत्र न दें फिर भी वृष, सिंह, गज आय को पुट, कर्पट और कोट में देना चाहिये एवं जन आय को वापी कूप और तालाब में देना चाहिये। अग्निसम्बन्धी कार्य वाले घरों में तथा अग्नि से जीविका चलाने वाली जातियों के लिए भी धूम आय श्रेष्ठ होती है। म्लेच्छादि जातियों के लिये धूम आय, वेश्या के लये खर आय, कूटी आदि में वायस, प्रसाद, ग्राम, गृह से वृष, सिंह, गज आय श्रेष्ठ होता है।

(ङ) वसिष्ठ मत में आयफल विचार–

गजाये वा ध्वजाये वा गजानां सदनं शुभम्।
अश्वालयं ध्वजाये च खराये वृषभेऽपि वा।।
उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये च वृषे ध्वजे।
पशु–सद्म–वृषाये च ध्वजाये वा शुभप्रदम्।।
शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।
अन्यत्र छत्रवस्त्राणां वृषाये च ध्वजेऽपि वा।।
पादुकोपनाहौ कार्यौ सिंहारव्येऽप्यथवा ध्वजे।
उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः।।

हस्तिशाला के लिये गज अथवा ध्वज आय शुभ होती है। अश्वशाला के लिये ध्वज, खर और वृषभ आय ग्राह्य हैं। ऊँटशाला निर्माण के लिये वृष, गज तथा ध्वज आय ग्राह्य हैं। सामान्य पशुशाला निर्माण में वृष अथवा ध्वज आय शुभप्रद होते हैं। शय्या गृह के लिये वृष आय, बैठक गृह के लिये सिंह आय शुभप्रद होते हैं। छत्र, वस्त्रों के लिये वृष अथवा ध्वज आय ग्राह्य हैं। तथा पादुका (जूता) के लिये सिंह आय शुभ होती है। शेष अनुक्त पदार्थों के लिये ध्वज आय शुभ होती है।

अभ्यास प्रश्न–1

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में दें–

प्र0 1 अर्थलाभ किस आय का फल है?

प्र0 2 विप्र वर्ण के लिए कौन सा आय शुभ होता है?

प्र0 3 क्षत्रिय वर्ण के लिए कौन–सा आय शुभ होता है?

प्र0 4 मेषराशि के लिए कौन–सा आय ग्राह्य है?

प्र0 5 अश्वशाला निर्माण में प्रयुक्त आय हैं?

4.3.2 व्यय–नक्षत्र–अंश–वार–तिथि–आयु आदि फल विचार–

व्ययफल विचार–

''पिशाचो राक्षसो यक्ष इति त्रेधा व्ययो मतः
साम्याधिक्यन्यूनताभिरायतः स्याद् यथाक्रमम्।।''

व्यय के तीन प्रकार हैं– पिशाच, राक्षस तथा यक्ष। ये यथाक्रम आय के बराबर, आय से अधिक व्यय एवं आय से न्यून व्यय के परिचायक हैं।

स्पष्टार्थ चक्र

क्रम	नाम	गुण	फल
1	पिशाच	आय के बराबर व्यय की संख्या	अशुभ
2	राक्षस	आय से अधिक व्यय की संख्या	अशुभ
3	यक्ष	आय से कम व्यय की संख्या	श्रेष्ठ

उपरोक्त चक्र से यह स्पष्ट है कि आय के बराबर व्यय की संख्या अर्थात् प्रथम व्यय पिशाच प्राप्त हो, तो वह गृह के लिए अशुभ होता है तथा द्वितीय व्यय प्राप्त हो, तो वह भी गृह के लिए अशुभ होता है। तृतीय व्यय यक्ष, आय से यदि कम व्यय की संख्या (शेषांक) हो, तो वह गृह के लिए श्रेयस्कर होता है। अन्तिम व्यय ग्राह्य है, शेष दो त्याज्य होते हैं।

गृहनक्षत्रफल विचार –

सुरराक्षसमर्त्याख्या ऋक्षाणां स्युर्गणास्त्रयः।
यद्गणर्क्षो भवेद् भर्ता तद्गणर्क्षं गृहं शुभम्।।

नक्षत्रों के तीन प्रकार के गण होते हैं– देवगण, राक्षसगण और

मनुष्यगण। जो गण गृहस्वामी का हो, वही गण यदि गृह का भी हो तो वह शुभ होता है।

कृत्तिकादि सात–सात नक्षत्र पूर्वादि दिशा में क्रम से होते हैं, इस प्रकार गृह के द्वार से वास्तुनक्षत्र और गृहपिण्ड सम्बन्धी नक्षत्र पीछे पड़े तो हानि और आगे पड़े तो आयु का नाश होता है। दाहिने या बायें भाग में हो तो शुभद होता है और देव–गृह में अथवा राजा के गृह में सन्मुख भी शुभदायक होता है। यथा–

धिष्ण्यानीह च सप्तसप्तक्रमतो वह्नेस्तु पूर्वादितः
सृष्टया तानि भवन्ति यत्र गृहभं तत्रैव चन्द्रो भवेत्।
हानिं पृष्ठगतः करोति पुरतस्त्वायुःक्षयं चन्द्रमाः
पार्श्वे दक्षिणबामके शुभकरोऽग्रे देवभूपालये।।

गृह–अंशफल विचार–

इन्द्रो यमश्च राजा च त्रयो नामाभिरंशकाः।
स्वनामतुल्यफलदा विज्ञातव्यास्त्रयोऽपि च।।

गृह अंशकों के नाम हैं– इन्द्र, यम तथा राजा। ये अपने नाम के अनुसार ही फल देते हैं। गृह प्रयोजनार्थ इन तीनों को जानना भी आवश्यक है।

इन्द्र अंश देवालय में, यम अंश वेदी और पण्य (बाजार) में तथा नाग और भैरव गृह में शुभद हैं और गजशाला, वाजिशाला, यानशाला, नगर राजा का गृह और साधारण गृह में राजा का अंश शुभद है। यथा–

वेद्यश्चात्र यमस्तु पण्यभवने नागे तथा भैरवे।
राजांशो गजवाजियाननगरे राजालये मंदिर।।

विश्वकर्मप्रकाश के अनुसार इन्द्रांश में पदवी वृद्धि (उन्नति) तथा महान्

सौख्य की प्राप्ति होती है। यदि यमांश आये तो मृत्यु या मृत्युतुल्यकष्ट एवं अनेक प्रकार रोगशोक से युक्त होता है। राजांश में धन–धान्य की प्राप्ति तथा पुत्र की वृद्धि होती है। जैसे–

इन्द्रांशे पदवीवृद्धिमहत्सौख्यं प्रजायते।।
यमांशे मरणं नूनं रोगशोकमनेकधा।
राजांशे धनधान्याप्तिः पुत्रवृद्धिश्च जायते।।

गृहवार फल–

सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदा।।
शेष ग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदाः।
तन्नवांश वशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहम्।।

रविवार एवं मंगलवार तथा इन ग्रहों के राशि एवं अंश सदैव अग्निभय देते हैं। अतः इनका त्याग करना चाहिए। शेष ग्रहों (सोमवार, बुधवार, गुरुवार, शुक्रवार तथा शनिवार) के वार तथा नवांश गृहारम्भ में शुभ फल देते हैं। गृह का जो नक्षत्र क्षेत्रफल के अनुसार आया हो वह नक्षत्र यदि दो राशियों में विभाजित हो, तो उसके नवांश के अनुसार सदैव गृह के नवांश का विचार करना चाहिये।

गृह–तिथि फल विचार–

तिथौ रिक्ते दरिद्रत्वं दर्शे गर्भनिपातनम्।।
कुयोगे धान्यादिनाशः पातश्च मृत्युदः।
वैधृतिः सर्वनाशाय नक्षत्रैक्ये तथैव च।।

यदि रिक्ता तिथि (4/9/14) में गृहारम्भ किया जाय तो दरिद्रता होती है। अमावस्या में गृहारम्भ होने पर गर्भपात होता है। यदि किसी सामान्य कुयोग में गृहारम्भ हो तो धान्यादि की हानि होती है। यदि व्यतिपात में गृहारम्भ हो तो

मृत्यु होती है। वैधृतियोग में किया गया गृहारम्भ सब प्रकार से हानिप्रद होता है। उसी प्रकार से यदि गृहस्वामी के नाम का नक्षत्र तथा गृह का नक्षत्र यदि एक ही हो, तो भी सर्वनाशकारक होता है। अतः उक्त तिथियों का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये तथा शेष तिथियाँ शुभप्रद होती हैं।

गृह–आयु फल विचार–

विश्वकर्मप्रकाश में कहा गया है कि आयु विहीन गृह में वास नहीं करना चाहिये। यथा– **''आयुर्विहीने गेहे तु दुर्भगत्वं प्रजायते''।**

हीन आयु वाले गृह में वास करने से दुर्भाग्य प्राप्त होता है; अतः हीनायु गृह में निवास नहीं करना चाहिये। गृह की आयु 8 वर्ष से 120 वर्ष पर्यन्त होती है। यहाँ 40 वर्ष पर्यन्त की आयु वाले गृहों को अल्पायु, 80 वर्ष तक मध्यमायु तथा 120 वर्ष को पूर्णायु जाने, यथासंभव पूर्णायु वाला गृह बनवाना चाहिये। यदि किसी कारणवश अल्प आयु वाले गृह में निवास करना पड़े तो फिर उसकी जितने वर्ष की आयु निकली है, उसे पूर्ण होते ही उस घर को छोड़ देना उचित होता है।

अभ्यास प्रश्न– 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

प्र0 1 यक्ष व्यय का फल..........................होता है।

प्र0 2 इन्द्र अंश.......................... में शुभद होता है।

प्र0 3 प्रथम व्यय .... है।

प्र0 4 स्वगण में.......................... प्रीति होती है।

प्र0 5 रविवार..........................वार है।

3.4 सारांश

मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में गृह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गृह के बिना गृही अथवा गृहस्थ की सिद्धि सम्भव नहीं है। सभी आश्रमों में महत्त्वपूर्ण आश्रम गृहस्थाश्रम शेष तीन आश्रमों का पालन करता है। गृहस्थ के मूल गृहनिर्माण की समस्त प्रक्रियाओं का निदर्शन करना ही वास्तुशास्त्र का प्रधान उद्देश्य है।

आयादि अर्थात् आय, व्यय, नक्षत्र, अंश, तिथि, वार, आयु इत्यादि पदार्थों के शुभ होने से गृहादि में धान्य, सौख्य, यश इत्यादि की वृद्धि होती है। इसी कारण हम गृह निर्माण में आयादि का विचार करते हैं। विविध पदार्थों के लिये उपयुक्त शालाओं का निर्माण, वर्णभेद से तथा राशि भेद से गृहनिर्माण का विचार प्राणिमात्र के लिए सुखी एवं समृद्ध जीवन के लिये अनिवार्य है। साथ ही गृह की स्थिरता अर्थात् गृह की आयु एवं सुखपूर्वक जीवन जीने का ज्ञान ये वास्तुशास्त्र के दो प्रयोजन हैं। आयु रहित गृह में गृहस्थ को विपत्ति का सामना करना पड़ता है। जिस तरह स्वस्थ शरीर से मानव संसार के सभी सुखों को भोगता है उसी तरह गृहस्थ भव्य, मनोनुकूल एवं स्थिरता युक्तगृह में रहकर गृहस्थ जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करता है। चरक ने सुखायु, दुःखायु, अहितायु तथा आयु के उचित मान को विचार करने वाले शास्त्र को आयुर्वेद कहा है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विकृत रूप से बनाया गया विकारी गृह गृहस्वामी के लिये अनिष्टफल ही देता है। अतएव इन समस्त दोषों को त्यागकर गृह को सदैव शुभावह बनाया जा सकता है।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

सदन = गृह उपानह् = जूता

श्रेयस्कर = श्रेष्ठ

उष्ट्र = ऊँट

वृष = गो (गाय)

अश्व = घोड़ा

शस्त = शुभ

ध्वाङ्क्ष = कौआ

कूप = कुआँ

कर्पट = कपड़ा

कुटी = झोपड़ी

प्रासाद = भवन

वैश्य = व्यापारी वर्ग

सुर = देव

ऋक्ष = राक्षस

धिष्ण्य = नक्षत्र

बदन = शरीर

हितकर = लाभ देने वाला

हरि = सिंह

प्रतीचि = पूर्व

उदीचि = उत्तर

प्रशस्त = श्रेष्ठ

वांछित = मनोनुकूल

प्रतिकूल = विपरीत

उक्त = कथित (कहा हुआ)

अनुक्त = न कहा हुआ

साम्य = संतुलन

मर्त्य = मानव

गृहभं = गृह–नक्षत्र

अर्थ = धन

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

अभ्यास प्रश्न–1 की उत्तरमाला

1. ध्वज 2. ध्वज 3. सिंह 4. गो 5. ध्वज, खर तथा वृष

अभ्यास प्रश्न– 2 की उत्तरमाला

1. श्रेयस्कर 2. देवालय 3. पिशाच 4. परम 5. अशुभ

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. समराङ्गणसूत्रधार, श्री भोजदेव प्रणीत, संपादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2017), वाराणसी।
2. विश्वकर्मप्रकाश, सम्पादक– महर्षि अभय कात्यायन, (2019), चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. वास्तुराजबल्लभ, श्रीमण्डनसूत्रधारकृत, सम्पादक– श्री अनूप मिश्र, (सं0 2053), मास्टर खेलाडीलाल प्रकाशन, वाराणसी।
4. बृहद्वास्तुमाला, श्रीरामनिहोर द्विवेदी कृत, डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी।
5. वास्तु रत्नाकर, सम्पादक– विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज (2012), वाराणसी।

4.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बृहत्संहिता, वराहमिहिर प्रणीत– भट्टोत्पलवृत्ति सहित, समपादक– पं0 अच्युतानन्द झा,(2014), चौखम्बा विद्याभवन, प्रकाशन, वाराणसी
2. मुहूर्तचिन्तामणि, रामदैवज्ञ कृत, संपादक– कमलाकान्त ठाकुर 'मैथिल', भारतीय विद्या प्रकाशन (2019), वाराणसी
3. मयमतम्, मयमुनि कृत, सम्पादक– डॉ0 श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं प्रो0 भँवर शर्मा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, (2019), वाराणसी
4.वास्तुसौख्यम्, टोडरमल प्रणीत, सम्पादक– आचार्य कमलाकान्त शुक्ल, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (1999), वाराणसी
5. मुहूर्तमार्तण्ड, श्रीनारायण दैवज्ञ विरचित, व्याख्याकार– डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र, कृष्णदास अकादमी (1997), वाराणसी
6. गृहवास्तुप्रदीप डॉ0 शैलजा पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन (2012), वाराणसी
7.वास्तुमण्डन, श्रीकृष्ण 'जुगनू' चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, (2005), वाराणसी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्र0 1 आय कितने प्रकार के होते हैं? वसिष्ठ मत में आय फल विचार पर प्रकाश डालें।

प्र0 2 विश्वकर्मप्रकाशोक्त आयफल विचार को प्रकाशित करें।

प्र0 3 वर्णभेद से आयफल विचार पर विस्तृत निबन्ध लिखें।

प्र0 4 व्ययादि फल विचार को सुस्पष्ट करें।